❀ श्रीविश्वनाथो जयति ❀

आदर्श-जीवन-संग्रह ।

——:०❀०:——

संग्रहकर्ता

अवधवासी, वेङ्कटेश्वर, हिन्दी वङ्गवासी
आदिके भूतपूर्व सम्पादक,

पं० शिवविहारीलाल वाजपेयी

—:❀:—

प्रकाशक

भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड,

काशी ।

—+❀+—

१९२४ ई० ।

 [मूल्य १॥)

सनातनधर्मकी पुस्तकें ।

धर्मकल्पद्रुम प्रथम खंड	२)
,, ,, द्वितीय ,,	१॥)
,, ,, तृतीय ,,	२)
,, ,, चतुर्थ ,,	२)
,, ,, पंचम ,,	२)
,, ,, षष्ठ ,,	१॥)
प्रवीण दृष्टिमें नवीन भारत	२)
नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत	१)
साधन चन्द्रिका	१॥)
शास्त्र चन्द्रिका (यन्त्रस्थ)	
धर्म चन्द्रिका	१)
आर्य गौरव	॥)
आचार चन्द्रिका	॥)
नीति चन्द्रिका	॥)
चरित्रचन्द्रिका (प्रथम भाग)	१)
धर्म प्रश्नोत्तरी	।)
परलोक रहस्य	।)
चतुर्दश लोक रहस्य	।)
सती चरित्र चन्द्रिका	२)
नित्य कर्म चन्द्रिका	।)
धर्म सोपान	।)
सदाचार सोपान	-)
कन्या शिक्षा सोपान	-)

बाकी नाम पुस्तकके अन्तमें देखें ।

❁ श्रीविश्वनाथो जयति ❁

आदर्श-जीवन-संग्रह ।

———oo:❁:oo———

संग्रहकर्ता

अवधवासी, वेङ्कटेश्वर, हिन्दी बंगवासी

आदिके भूतपूर्व सम्पादक,

पं० शिवविहारीलाल वाजपेयी

—:o:—

प्रकाशक

भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड,

काशी ।

—+—

१९२४ ई०

[मूल्य १॥)

श्रीयुत बाबू एच. एन्. बागचीके
प्रबन्धसे—भारतधर्म प्रेसमें मुद्रित।

भूमिका ।

समय समयपर प्रत्येक समाज तथा देशमें आदर्श महानुभावोंका आविर्भाव हुआ करता है। उनके आविर्भावसे तत्कालीन समाजपर विलक्षण प्रभाव पड़ता है। अपने अपने कालमें जिस क्षेत्रमें वे कार्य्य करते हैं, उसके तो वे नेता हुआ ही करते हैं, भावी संसारके भी वे पथप्रदर्शक होते हैं। साहस, मनुष्यत्व एवं सभ्यतासे वञ्चित समाज को ऐसे महानुभावोंके जीवन-चरित्रसे अत्यन्त लाभ होता है। किसी महात्मा का तो कथन है कि,—"मनुष्यमें मनुष्यत्व, साहस और सामयिक योग्यता-का आविर्भाव संसारके आदर्श महानु-भावोंके चरित्रको पढ़ने, मनन करने तथा अनुकरण करनेसे होता है।"

वास्तवमें संसारके आदर्श महानु-भावोंका मनुष्यके जीवनचरित्रपर बड़ा ही प्रभाव पड़ता है। ऐसे ही जीवन

चरित्रोंपर भावी सन्तानका चरित्र-संगठन निर्भर है। धर्मक्षेत्रमें महाराज शंकराचार्य्य, गुरु नानक, हजरत मुहम्मद, ईसामसीह, साहित्यक्षेत्रमें महर्षि वेदव्यास, महाकवि माघ, गोस्वामी तुलसी दास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, शासन-क्षेत्रमें महाराजा युधिष्ठिर, सिकन्दर आजम, राजनीतिक क्षेत्रमें माननीय महादेव गोविन्द रानाडे, लोकमान्य तिलक, मिस्टर ए०ओ० ह्यूम, सर सुरेन्द्रनाथ बनरजी, श्रीमती डाक्टर एनी बीसण्ट, कर्मवीर गान्धी, तथा स्त्रियोंमें महारानी अहिल्याबाई, महारानी दुर्गावती आदि महानुभावों और महादेवियोंका प्रायः प्रत्येक समाज और देश किसी न किसी अंशमें ऋणी है।

पाश्चात्य देशोंमें ऐसे महानुभावोंके जीवनचरित्र लिखनेकी प्रथा है। उनके साहित्यमें जीवनचरित्रको मुख्य स्थान दिया जाता है। यथार्थमें जिस

साहित्यमें आदर्श जीवन-चरित्रका अभाव हो, वह साहित्य साहित्य नहीं। हमारे देशमें पुराण और इतिहासमें ऐसे महाव्यक्तियोंकी कमी नहीं। किन्तु अभीतक "हिन्दी" साहित्यमें ऐसे जीवनचरित्रोंका अभाव है। इसी कमीकी पूर्तिके लिये ऐसे महानुभावोंके जीवनचरित्र प्रकाशित करनेका संकल्प किया गया है। इसी उद्देश्यका फलस्वरूप "श्री बाजपेयी" जीकी संग्रहीत यह प्रथम पुष्पाञ्जलि हिन्दीसाहित्यके प्रेमियोंकी सेवामें अर्पित की जा रही है। इस "आदर्श-जीवन-संग्रह" में जिन महापुरुषोंके जीवन-चरित्र संग्रहीत हुए हैं, उनमें नाना प्रकारके रंग विरंग फूलोंकी भांति अनेक आदर्श देख पड़ेंगे। कोई असाधारण त्यागपरायण हैं, तो कोई विलक्षण प्रतिभाशाली हैं, कोई शास्त्र-कुशल हैं, तो कोई राजनीतिके पण्डित हैं। स्त्रियों-

की यद्यपि इनी गिनी जीवनियाँ हैं, तथापि वे अनेक गुणसम्पन्ना विविध-नारियोंके चरित्र ऐसे हैं जिनका कन्याओं या महिलाओंके स्वभाव और रुचिपर बहुत ही प्रभाव पड़ सकता है। प्रत्येक चरित्रमें आदर्श भावोंको दिखानेका विशेष ध्यान दिया गया है और सभी चरित्र निष्पक्ष भावसे लिखे गये हैं, जिससे सब जाति-धर्मके बालक-बालिकाओंके उपयुक्त यह पुस्तक हो सके। आशा की जाती है कि संसारके इन आदर्श महानुभावोंके जीवनचरित्रोंके अध्ययनसे भावी सन्तान-को मनोरञ्जनके साथ ही साथ संसार-के सामाजिक इतिहासका भी कुछ परिचय होगा।

इस "आदर्श-जीवन-संग्रह" के लिये "भारतधर्म सिण्डिकेट" श्री-वाजपेयीजीका अत्यन्त कृतज्ञ है और उनको हार्दिक धन्यवाद देता है।

प्रकाशक।

ग्रन्थ रत्नोंकी सूची ।

—०:*:०—

जयजवाली ग्रन्थमाला रत्न १

गोस्वामी तुलसीदास

सन् १९२१ ई०

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदासजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण तरीके शुक्ल थे। अन्तर्वेद अन्तर्गत तरी ग्राम में आपके पिता आत्मारामजी रहते थे। विक्रम सम्वत १५८९ में तुलसीदासका जन्म हुआ था। आपकी माताका नाम तुलसी था और श्वशुरका नाम दीनबन्धु था। वह पाठक थे। दीनबन्धु की कन्या रत्नावली तुलसीदास जीको ब्याही थी।

अनेक लोग कहते हैं,—तुलसीदास जी सरजूपारी ब्राह्मण थे। वह बांदा जिला "राजापुर ग्राम में रहते थे।„ यह उनका कहना एकदम असिद्ध है। तुलसीदास जी राजापुर गृहस्थी त्यागनेके पीछे गये थे। वहाँ उनका घर नहीं था और वह सरजूपारी ब्राह्मण भी न थे। तरीके शुक्ल सरजूपारी ब्राह्मणों में नहीं होते। सरवारमें कोई ग्राम भी तरी नामका नहीं है। अन्य कोई तुलसीदास सरजूपारी ब्राह्मण भलेही

हुए हों किन्तु रामायणकर्ता गोस्वामी तुलसीदासजी कान्यकुब्ज ही थे, इस में संदेह नहीं है।

कोई कोई कहते हैं, कि तुलसीदासजी का मूल नक्षत्र में जन्म हुआ था। इसलिये उनके माता पिताने जन्मतेही उन्हें त्याग दिया था। इस त्यागने के प्रमाण में वह तुलसीदास कृत विनय पत्रिकाका यह पद कहते हैं,—

"जननी जनक तज्यो जनम,,
करम बिन विधि सिरज्यो अवडेरे।

माता पिताके त्यागे हुए पुत्र तुलसी दासको नरसिंहदास नामक एक साधु उठा कर अपने स्थान सोरो ले आये। उन्होंने इनका पालन पोषण कर इन्हें रामभक्त बनाया था। आगे सचेत होने पर अपना शिष्य कर लिया। पीछे उनका विवाह हुआ। यह बात भी ठीक २ समझ में नहीं आती। साधु सत्संगके पश्चात विवाहकी इच्छा होना अनोखी बात है। तुलसीदास जीके माता पिताने उन्हें फेंक दिया हो यह बात भी सिद्ध नहीं होती। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में संतान को और विशेष कर

पुत्रको इस प्रकार त्यागनेकी प्रथा नहीं है। यह कल्पना एकदम मिथ्या है।

तब यह हो सकता है, कि तुलसीदास जीके माता पिता इन्हें बालक छोड़कर ही स्वर्गवासी हो गये हों। और ऐसाही हुआ भी था। चक्रवर्ती-कृत साहित्य-संग्रह में लिखा है, तुलसीदासजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण तरीके शुक्ल थे। वह माता पिताका शरीरांत होनेके पश्चात अनेक दिन आनंद पूर्वक गृहस्थी में रहे थे। उनके एक पुत्र हुआ था। पुत्र स्त्री छोड़कर वह ज्ञान पूर्वक साधु हुए थे। उसमें उनके वैराग्य उत्पन्न होने का कारण उनकी स्त्री को बतलाया है।

कहते हैं तुलसीदासजी साधु होनेके पूर्व बड़े स्त्रैण थे। स्त्रीका वियोग एक घड़ी भी उनसे सहन नहीं किया जाता था। उसको एक दिनके लिये भी उसके माता पिताके घर नहीं जाने देते थे। एक दिन उनकी स्त्रीका भाई अचानक आया और अपनी बहनको लेकर अपने घर चला गया। यह जब घर आये तो देखा कि स्त्री नहीं है। इन्हे मालूम हुआ कि वह अपने भाई के साथ अपने पिताके घर चली गई है।

यह स्त्री प्रेमी तो वे ही सुनकर घबड़ा गये और तुरन्त लोटा डोर लेकर ससुराल पहुँचे।

स्त्री थोड़ी ही देर पहले वहां पहुची थी। अभी वह अपने मां के घर बहन भौजाई और माता पिताऽसे मिल भी नहीं चुकी थी। इसी बीच इनके पहुँचने की खबर उसको मिली। वह लज्जित होकर झुंझला उठी और बोली—"जितनी प्रीति तुमको मेरे हाड़ मांसके शरीर में है उतनी प्रीति यदि रामचन्द्र में होती तो क्या न होता। इसी वचन को कविने पद्यमें कहा है,—

लाज न लागत आपुको,
धौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेमको,
कहा कहौं मैं नाथ।
अस्थि चर्ममय देह मम,
तामों जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ,
होत न तौ भव भीति।

स्त्री का यह वचन सुन तुलसीदासजी को वैराग्य उत्पन्न हुआ। वहीं लस्य वहाँसे

निकल वह काशी को रवाना हुए। काशी पहुंच कर ईश्वराधन में तत्पर हुए। पश्चात् चित्रकूट, राजापुर, प्रयाग अयोध्या जगन्नाथपुरी और व्रज में विचरते फिरे। गोस्वामीजीने रामायण रचना का आरम्भ श्री अयोध्याजी में किया था। उन्होंने स्वयम् रामायणके बालकांड में लिखा है।

"सम्वत सोलह सौ इकतीसा।
करौं कथा हरिपद धर सीसा॥
नौमी भौमवार मधु मासा।
अवधपुरी यह चरित प्रकाशा॥

गोस्वामीजी पूर्ण महात्मा रामोपासक महायोगी तथा सिद्ध थे। नाभाकृत भक्त-माल में आपकी सिद्धताके अनेक उदाहरण हैं। राजा महाराजा, सेठ, साहूकार, विद्वान, पण्डित, साधु महात्मा सब आपकी प्रतिष्ठा करते थे। वैसाही सम्मान, वैसीही प्रतिष्ठा वरन उससे भी बढ़कर गोस्वामीजीकी आज भी है।

गोस्वामीजीके ग्रन्थोंको पढ़नेसे मालूम होता है, कि वह चारों वेद, छहों शास्त्र अट्ठारहों पुराण तथा अनेक विद्या-ओंके पूर्ण ज्ञाता एवम् परम नीतिज्ञ थे।

उनका शरीरान्त हुआ। मृत्युके समय वह लाहोर में थे। १५८९ में उनकी मृत्यु हुई थी।

राजा टोडरमलके एकमात्र एक पुत्र था। पिताकी भांति पुत्र भी बड़ा बीर था। पिताकी आज्ञासे धारा-सिन्धकी लड़ाईमें बादशाहकी ओरसे वह लड़ने गया था। वहां घोर संग्राम के पश्चात वह बीर गतिको प्राप्त हुआ। टोडरमलको मृत्यु समय तक यह पुत्र शोक नहीं भूला।

आपके दीवान होनेके पहले अन्य मुसलमान बादशाहोंकी भांति अकबर भी केवल मुसलमानोंकी सलाहसे राजकाज करता था। पर केवल मुसल-मानोंकी सलाहसे राजकाज करने पर एकपक्षीय शासन होनेके कारण देशमें अन्याय फैल गया। सारी प्रजा अकुला गई। लाचार ख़ैरखां खान खानासे कार्याधिकार छीनकर अकबरने राजा टोडरमलके सुपुर्द किया। साथ राज्य में योग्य और अधिक संख्यामें हिन्दू राज-कर्मचारी वर्गकी भरती किया।

दरबार और सेनामें हिन्दू कुन्द अग्रसहेश होनेसे राज्यकाकार्य सुन्दर रूपसे चलने लगा। हिन्दू मुसलमान दोनोंही संतुष्ट हुए। राजा टोडरमल आदि हिन्दू अध्यक्षोंकी सलाहसे अकबरने भारत में गो हिंसा बन्दकर दी, तीर्थोंका कर माफ कर दिया। टोडरमलकी नीतिसे सम्पूर्ण भारत-। वर्ष अकबरके अधिकार में आ गया बादशाह अकबर कुछ पढ़े लिखे नहीं थे किन्तु गुण ग्राहक थे। अतः टोडलमलका विद्वताके बल अकबर राज्य में आईनका सुन्दर रीतिसे प्रचार हुआ। आईन-ए अकबरी जो अकबरके समयका प्रसिद्ध आईन है, वह उन्हीं टोडरमलका रचा हुआ है।

जिन लोगोंको यह भ्रम हुआ करता है कि भारतवासी भारतका प्रबन्ध नहीं कर सकते, यह लोग उच्च पद प्राप्त करनेके योग्य नहीं है, उन्हें चाहे वह देशी सज्जन हो और चाहे विदेशी महानुभाव हों एक बार

रामलहछू (१९) वैराग्य सन्दीपनी (२०) कड़खाछन्द (२१) रोला छन्द (२२) झूला छन्द (२३) सूर्यपुराण, (२४) विनय पत्रिका और (२५) अनेक भजन।

यह ग्रन्थ एकसे एक अनुपम हैं किन्तु "अक्षर कामधेनु,, की कहावत मानस रामायण में प्रकट है।

इतनी ग्रन्थावली रचकर गोस्वामीजी इस असार संसारसे चल बसे। उनके अन्तिम वचन यह है।

दोहा-सम्वत सोंलह सौ असी,
असी गङ्ग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी,
तुलसी तजें शरीर।
राम नाम यश वर्णि के,
भयो चाहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये,
अबहीं तुलसी सौन॥

पण्डित [illegible] लाल वाजपेयी द्वारा
[illegible]-प्रेस [illegible]
मुद्रित और प्रकाशित

मध्यभारती ग्रन्थमाला रत्न २

राजा टोडरमल

सन् १९२१ ई०

राजा टोडरमल

पंजाब प्रान्तके लहोर शहर में एक खत्रीके घर इनका जन्म हुआ था। पांच वर्षकी अवस्थामें इनके पिताका शरीरान्त हो गया। माताने अपने मायके में रहकर गुजरातकी किसी पाठशाला में इन्हें पढ़ाया था। ११ वर्षकी अवस्थामें यह राजा हरबंशराय के यहां नौकर होकर लाहौर आये। तीन वर्षके बाद हरबंशरायका शरीरान्त हो गया। तब इन्होंने शेर शाह सूरके यहां नौकरी कर ली। उनके यहां यह मुन्शियों में भरती हुए।

कुछ समयके पश्चात शेरशाहसूर भी मर गया। अब टोडरमलने बादशाह अकबर की फौज में नाम लिखा लिया। टोडरमल अति होनहार थे। फौज में भरती होकर इन्होंने अपनी योग्यताका अद्भुत परिचय दिया। उसका फल यह हुआ कि यह थोड़े ही दिनों में बख्शी-मेजर हो गये। इसी

समय बंगालका सूबेदार दाऊदखाँ बागी हो गया। यह उसको दमन करने के लिये भेजे गये। इन्होंने बड़ी वीरतासे लड़कर दाऊदखाँको परास्त किया। इनकी वीरता और योग्यता से प्रसन्न होकर अकबरने इन्हें सन १५८० में बंगालका सूबेदार नियत कर दिया।

टोडरमलने सूबेदार होकर बंगालके सूबेका प्रबन्ध इस भाँति किया,—

१-ईरान देशके अनुसार हिसाब का तरीका जारी किया।

२-खेतोंकी पैमाइश कराके सीमाबंदी की और लगान लगाया।

३-रुपयेके ४० दाम ठहराये उससे सर्व साधारणको लेन देन में सुभीता हुआ।

४-राज्य भरमें डिपुटी कमिश्नर नियत किये।

५-सरकारी घोड़ोंके दाग लगवाये

६-सहस्रों लौंडी और गुलामों को बन्धन-मुक्त कराया।

इस प्रबन्धसे आपका बड़ा नाम हुआ। भारतमें आज पर्यन्त टोडरमल का नाम लोगोंकी जबान पर है। बादशाह अकबरने इनके प्रबन्धसे प्रसन्न होकर इन्हें अपने दरबार में दीवान आला नियत किया। बंगाल से इन्हें दिल्ली बुला लिया। दिल्लीमें आकर राजा टोडरमलने अपनी योग्यतासे बादशाहको बहुत खुश किया। प्रजाहितके लिये आपने बहुत कार्य किये।

किसी कुटुम्बीकी मृत्यु होने पर पंजाबके खत्रियों में सियापेकी बड़ी बिलक्षण रसम थी। मरनेके समयसे तीन २ बर्ष तक नित्य नियत समय वहां स्त्रियां बैठकर छाती पीट पीट कर रोती थीं। वंशके बंश स्त्रियां चूड़ी उतार डालती थीं। इस प्रकार एक पुरुषके मरनेसे हजारों लाखों स्त्रियां बिधवा जैसी हो जाती थीं।

इस प्रकारका एक सियापा खत्म

नहीं हो पाता था और दूसरा तीसरा चौथा तथा और अधिक सियापे तैयार रहते थे। इसका फल यह होता था, कि पंजाबकी सधवा स्त्रियोंको भी जन्मभर विधवा स्त्रियों की भांति स्यापा जैसे भोगना पड़ता था। हर समय वहां सियापा छाया रहता था। रोनेसे किसीको छुटकारा नहीं मिलता था।

राजा टोडर मलने इस सियापे की तीन साला रसम को उठाकर वार्षिक कर दिया। टोडरमल फारसी अरबी संस्कृत तथा हिन्दीके पूर्ण विद्वान थे। आप भाषा कविता अच्छी करते थे। श्रीमद्भागवतका आपने संस्कृतसे फारसी में अनुवाद किया था। सनातन धर्मके आप बड़े प्रेमी थे। अपने पूर्वजोंकी टोडरमल बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। काशीवासी पण्डित राम दैवज्ञने "टोडरानन्द," नामक ज्योतिषका ग्रन्थ आपके नाम पर रचा था।

टोडरमलकी बादशाह अकबरके

अधरतान्नों में गणना है। अनेक लोग कहते हैं, राजा टोडरमल कायस्थ थे यह उनकी भूल है। अवश्य ही टोडरमल दो थे। किन्तु यह टोडरमल जिनका जीवन चरित्र ऊपर लिख चुके हैं, खत्री थे। इनका जन्म लाहौरमें हुआ था। यह अकबरके दरबार में दीवान आला थे। दूसरे टोडरमल जिनके भ्रम से पड़कर इन्हें कायस्थ बतलाया जाता है अवश्य कायस्थ थे।

दूसरे टोडरमलका अवध प्रान्तमें जन्म हुआ था। अवध अन्तर्गत सीतापुर जिलेमें लहिरी नामक एक ग्राम है। यही ग्राम कायस्थ-कुल-भूषण दूसरे टोडरमल जी की जन्म भूमि है। वह कायस्थ-कुल-कमल दिवाकर बादशाह शाहजहांके दरबार में वजीर थे। शाहजहां जहांगीर बादशाहका पुत्र था। अकबर बादशाहके दरबारमें जो टोडरमल थे वह खत्री थे। उनका जन्म १५१७ में हुआ था। ७२ वर्षकी अवस्था में

उनका शरीरान्त हुआ। मृत्युके समय वह लाहोर में थे। १५८९ में उनकी मृत्यु हुई थी।

राजा टोडरमलके एकमात्र एक पुत्र था। पिताकी भांति पुत्र भी बड़ा वीर था। पिताकी आज्ञासे धारा-सिन्धकी लड़ाईमें बादशाहकी ओरसे वह लड़ने गया था। वहां घोर संग्राम के पश्चात वह वीर गतिको प्राप्त हुआ। टोडरमलको मृत्यु समय तक यह पुत्र शोक नहीं भूला।

आपके दीवान होनेके पहले अन्य मुसलमान बादशाहोंकी भांति अक-बर भी केवल मुसलमानोंकी सलाहसे राजकाज करता था। पर केवल मुसल-मानोंकी सलाहसे राजकाज करने पर एकपक्षीय शासन होनेके कारण देशमें अन्याय फैल गया। सारी प्रजा अकुला गई। लाचार बैरमखां खान खानासे कार्याधिकार छीनकर अकबरने राजा टोडरमलके सुपुर्द किया। साथ राज्य । में योग्य और अधिक संख्यामें हिन्दू राज-कर्मचारी वर्गको भरती किया।

दरबार और सेनामें हिन्दू कर्म्मचारियोंके प्रविष्ट होनेसे राज्यकाकार्य सुन्दर रूपसे चलने लगा। हिन्दू मुसलमान दोनोंही संतुष्ट हुए। राजा टोडरमल आदि हिन्दू अध्यक्षोंकी सलाहसे अकबरने भारत में गो हिंसा बन्दकर दी, तीर्थोंका कर माफ कर दिया। टोडरमलकी नीतिसेसम्पूर्ण भारत-। वर्ष अकबरके अधिकार में आ गया बादशाह अकबर कुछ पढ़े लिखे नहीं थे किन्तु गुण ग्राहक थे। अतः टोडलमलका विद्वताके बल अकबर राज्य में आईनका सुन्दर रीतिसे प्रचार हुआ। आईन-ए अकबरी जो अकबरके समयका प्रसिद्ध आईन है, वह इन्हीं टोडरमलका रचा हुआ है।

जिन लोगोंको यह भ्रम हुआ करता है कि भारतवासी भारतका प्रबन्ध नहीं कर सकते, यह लोग उच्च पद प्राप्त करनेके योग्य नहीं है, उन्हें चाहे वह देशी सज्जन हो और चाहे विदेशी महानुभाव हों एक बार

राजा टोडरमल्लके प्रबन्धकी ओर दृष्टिपात करना चाहिये। जिस समय भारतका कोई देशी हिन्दू सम्राट नहीं था, भारतवर्ष एक विदेशी भिन्न धर्मी मुसलमान सम्राट द्वारा शासित होता था, उस समय राजा टोडर-मलजीने दीवान आलाका पद ग्रहण करके किस योग्यताके साथ प्रबन्ध किया कि हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रकारकी प्रजाने कभी शिर नहीं उठाया। खुलासा यह कि अक-बरका राज्य मुसलमान बादशाहोंके शासन में जिन हिन्दू रत्नोंके कारण सर्व शिरोमणि समझा गया उन में एक प्रधान रत्न हमारे चरित्र नायक श्रीमान राजा टोडरमलजी सत्री थे।

राजा टोडरमल के उद्योगसे अकबरका राज्य कई सूबोंमें विभक्त किया गया, राजा टोडर मलकी सलाहसे राज्यकी मालगुजारी वसूल करनेका सुप्रबन्ध किया गया, [राजा टोडर मलकी सम्मतिसे प्रजाको सुरक्षित करनेका उद्योग किया गया

और राजा टोडरमलके ही सद् विचारसे जङ्गी सिपाहियोंको जागीर की जगह नगद् रुपया तनखाह में देनेका प्रबन्ध किया गया। इसीप्रकार नाना प्रबन्धोंके कारण अकबर का राज्य सुप्रसिद्ध हुआ। इस शासन एवं सुप्रबन्धके लिये राजा टोडरमल जी का नाम प्रातः स्मरणीय है।

बीरबल, राजामानसिंह, अबुल-फजल, अबुलफैज फैजी, अब्दुलरहीम खानखाना, मिर्जा कोकुलताश, तानसेन और सूरदास यह राजा टोडरमलके सम-सामयिक हैं।

पण्डित विपिनबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हीवेट रोड लखनऊ
मुद्रित और प्रकाशित

[illegible] ग्रन्थमाला रत्न ३

महर्षि वेदव्यास

सन् १९२१ ई०

महर्षि वेदव्यास ।

महर्षि व्यासजी पराशर मुनिके पुत्र हैं । भारत में महाभारत युद्ध जिस समय हुआ है, उसी समय इन ऋषि प्रवरका जन्म हुआ था, महाभारत युद्धका 'पृथ्वी-राज रासो, में चन्द कविने ८१४ वर्ष कलि-काल व्यतीत होने पर होना निश्चित किया है । काश्मीर राज तराङ्गणीकार पण्डित कल्हण मिश्रजीने ६५० वर्ष कलि-कालके गत होने पर इस युद्धका होना बतलाया है । इस स्थानमें महाभारत युद्ध कब हुआ, यह सिद्ध करनेका विशेष प्रयो-जन नहीं है । महर्षि व्यासजी महाभारत युद्धके समयमें हुए, केवल इतना ही जानना यथेष्ट है ।

महर्षि व्यासजी कृष्ण द्वैपायन, वेद व्यास, बादरायण आदि कई नामोंसे भुव-मण्डलमें प्रख्यात हैं । इन अनेक नामोंकी व्युत्पत्ति इसी प्रकार है । व्यासजीका जन्म यमुनाके एक द्वीपमें हुआ था । उनका वर्ण कृष्ण था । इसी कारण वह

कृष्ण द्वैपायन नामसे प्रख्यात हुए। वह वेद-विद्या पारंगत थे, इसलिये वेदव्यास कहे जाते थे। और व्यासजी बदरीकाश्रम में अनेक दिन पर्यन्त रहे थे, इस निमित्त वह बादरायण नामसे प्रसिद्ध थे।

महर्षि व्यासजी के जैसा बहुत ग्रन्थ-कार भूमण्डलमें दूसरा नहीं हुआ। चारों वेदोंको संग्रह करके इन पूज्य पाद महर्षि जीने उनको श्रेणी बद्ध किया था। यह महर्षिवर ब्रह्मज्ञानी, विद्वान तथा अद्वि-तीय कवि थे। कवि होनेके अतिरिक्त व्यासजी इतिहासकार, सूत्रकार, भाष्यकार स्मृतिकार तथा ब्रह्मविद्या प्रचारक थे।

दिव्य, अदिव्य तथा दिव्यादिव्य सभी चरित्रोंको व्यासजीने स्वरचित ग्रन्थमें निःशेष कर दिया है। जैमिनि, वैशम्पायन तथा उग्रश्रवा सूत सरीखे ३५००० अद्वितीय विद्वान इन ऋषि महाराजके शिष्य थे और शुकदेवजी जैसे परम योग्य मुनिवर इनके पुत्र थे। व्यासजीने वेदोक्त देवासुर संग्राम तथा ऋषि प्रक्रियादिभेदके आशय पर पुराण संहिता रच कर अपने शिष्य लोमहर्षण सूतको पढ़ाया था। पश्चात

लोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवाने पुराण संहिता में अपने प्रश्नोत्तर मिला कर निम्नस्थ १८ पुराणोंको पृथक २ रचा था।

वह १८ पुराण यह हैं,—(१) मत्स्य पुराण (२) मारकण्डेय पुराण (३) भविष्य पुराण (४) श्रीमद्भागवत पुराण (५) ब्रह्मवैवर्त पुराण (६) ब्रह्माण्ड पुराण (७) ब्रह्म पुराण (८) वाराह पुराण (९) अग्नि पुराण (१०) विष्णु पुराण (११) वामन पुराण (१२) लिङ्ग पुराण (१३) गरुण पुराण (१४) कूर्म पुराण (१५) स्कन्ध पुराण (१६) पद्म पुराण (१७) शिव पुराण और (१८) नारद पुराण

कहते हैं, भारत नामसे भारत युद्धका इतिहास व्यासजीने २४००० श्लोकोंमें बनाया था। उपरान्त अन्य विद्वानोंने भिन्न २ समयमें होकर बहुतसे और उपाख्यान उसमें मिला दिये। तब एक लाख श्लोकोंसे युक्त होकर भारत इतिहास महाभारत नामसे प्रख्यात हुआ। पर इस कहावतका यथेष्ट प्रमाण नहीं मिलता। अतएव सन्देहमें नहीं पड़कर यही निश्चय करना होता है, कि कुल महाभारत महर्षि

व्यासजीका ही रचा हुआ है। सम्भव है अन्य अनेक ग्रन्थोंकी भांति इसमें भी कुछ क्षेपक हों, किन्तु यह बात निश्चित है, कि महाभारत श्रीवेदव्यासजीका ही रचा है।

महाभारतके अतिरिक्त विजय मुक्तावली तथा वेदान्त सूत्र आदि और अनेक ग्रन्थ व्यासजी कृत हैं। १८ उपपुराणों में वर्णित अनेक विषय भी व्यास प्रणीत हैं। व्यासजी भारतके अतिरिक्त अन्य देशोंमें भी धर्म सम्बन्धी झगड़ोंका निपटारा करने जाते थे। पारसियोंकी धर्म पुस्तक 'ज़ेन्दावस्ता में लिखा है,—'महर्षि व्यास, जरदस्तसे शास्त्रार्थ करने बलखबुखारा गये थे। शास्त्रार्थमें शाह ईरान मध्यस्थ था। शास्त्रार्थका विषय था,—"यदि मनुष्य अन्याय कर सकता है, तो देहधारियोंमें सर्वोत्तम क्यों है!,,

इसी प्रकार यूनानके इतिहासमें महर्षि व्यासजीका यूनान जाना प्रमाणित है। वहांके इतिहासमें लिखा है,—३३८० वर्ष नूह तूफानके पश्चात् यूनानमें सोलन नामक एक प्रसिद्ध नेता हुए थे। उस समय पेरियाण्डर अर्थात् प्रचण्डर शासक राजा वहां

राज करते थे। यह समय वह था जब ईरानमें साइरस अर्थात खुसरव राजा था। उसी पुरन्धर राजाके समय यूनानके सप्त ऋषियोंमें व्यासजीका नाम भी है। सातों ऋषियोंके नाम इस प्रकार इतिहास में मिलते हैं,--

(१) थेल्स-गलेशियाके रहने वाले।
(२) श्विलो-लकेडमनके रहने वाले।
(३) पिताकस-मिताइलनकेनिवासी।
(४) अनाकारसिस अर्थात ओङ्कार ऋषि-सिथिया के रहने वाले।
(५) सोलन--यूनान के।
(६) व्यास और।
(७) कल्यू बोलस।

यूनान--इतिहासमें एक आख्यायिका है। उसका आशय है,——महाराज पुरन्धरके दरबारमें पूर्वोक्त सातों ऋषि एक दिन बिराजमान थे। महाराजने सबके समक्ष राजकीय बिषयकी चर्चाकर प्रश्न किया। कहा,--"कौनसा राज्य धर्म पराधरा और सर्वप्रिय कहा जा सकता है। आप महर्षि गण अपनी २ मतिके अनुकूल

विचार कर बतलाइये ।„ उसमें सप्त ऋषियोंने इस भांति कहा,--

(१) व्यासगोने कहा,--"जहां कानून में कोई छोटा बड़ा नहीं हो अमीर और गरीब सबके लिये एक कानून हो ।„

(२) थेरवने कहा,--"जहां की प्रजा न बहुत मालदार है न बहुत कङ्गाल ।„

(३) अनकारसिसने उत्तर दिया——"जहां नेकी की इज्जत हो और बदीसे घृणाकी जाती हो ।„

(४) पिताकस बोले,--"जहां केवल अच्छे पुरुषोंको प्रतिष्ठा की जाती हो और खराब मनुष्योंको प्रतिष्ठा नहीं दी जाती हो ।„

(५) काल्यूब्रोलसने कहा,--"जहां की प्रजा दण्डके बदले अपराधों से अधिक डरती हो ।„

(६) शिलोने जवाब दिया,--"जहां व्याख्यातोंके बदले कानूनका अधिक ध्यान हो ।„

(७) सोलनने कहा,——"जहां छोटा से छोटा प्रजाको सताना सबका अपमान समझा जाता हो ।„

इन विदेशी ऐतिहासिक प्रमाणोंसे

सिद्ध होता है, कि महर्षि व्यासजी महाभारतके पश्चात यूरोप अमेरिका आदि संसारके अन्य महाद्वीपों तक गये हैं तथा पहले भी जाया करते थे। व्यासजी आविष्कारकर्ता भी अनुपम थे। दूरदर्शक यन्त्रका पहले पहल महर्षि व्यास जीने ही आविष्कार किया था। इन ऋषिप्रवरने संसारी जीवोंके उपकारके लिये जैसा परिश्रम किया है, उससे संसार भर इनका ऋणी हो गया। भारतवर्षमें इनकी श्रद्धा किसी अवतारसे कम नहीं है।

सम्पूर्ण भारत में व्यासजी हिन्दूमात्र के घर घर पूजे जाते हैं। संसार मे और इस भारतमें अगणित बड़े २ राजा महाराजा एवं चक्रवर्ती नरेश हो गये किन्तु आज किसीका नाम निशान तक नहीं है। जिस नरेशकी गद्दी कहाँ लगती थी, उसका चिन्ह तक नहीं मिलता, किन्तु देश हितैषी, महर्षि व्यासजीकी पूजा आज पर्यन्त घर घर बड़ी श्रद्धा भक्ति से की जाती है। भारत से प्राचीन हिन्दू नरेशोंकी राजगद्दियां भले ही उठ गयी हों किन्तु महर्षि व्यासजी की आज भी

पूर्ववत जगमगा रही है। उनका इतिहास आज भी भारत में शोभायमान है। प्रतिवर्ष आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा को घर घर व्यास पूजा होती है। उस दिन 'नमोऽस्तुते व्यास विशाल बुद्धे' की ध्वनिसे आकाश गूँज उठता है।

महर्षि व्यासजीका जीवन चरित्र प्रत्यक्ष दर्शा रहा है, कि नाना प्रकारकी विद्याओंका अध्ययन पेट पूजा और धनोपार्जनके लिये नहीं होता किन्तु देशोपकार के लिये होता है। जो लोग देशोपकारके लिये शरीर अर्पण करते हैं, उनका जन्म व्यासजीकी भांति अमर अजर हो जाता है और वह संसारमें व्यास की भांति अपनी गद्दी पूज्य कर छोड़ते हैं। उनको भी संसारमें, "नमोऽस्तुते व्यास विशालबुद्धे" जैसे स्तवन मन्त्रोंसे प्रतिवर्ष आवाहन किया जाता है।

ग्रन्थोंमें लिखा है, महर्षि व्यासजी बहुत दीर्घ जीवी हुए थे। चन्द्रवंशको प्रायः ५ पीढ़ियोंमें इनके सामने राज्य किया था।

पण्डित शिवबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैदरगंज कदीम लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

[illegible] ग्रन्थमाला रत्न ५

महादेव गोविन्द रानाडे

सन् १९२१ ई०

महादेव गोविन्द रानाडे।

वह महापुरुष धन्य हैं, जिन्होंने अपना सारा जीवन निःस्वार्थ दूसरों की सेवा में बिताया। धन्य हैं, वह जिन्होंने एक क्षण के लिये भी कभी देश सेवासे मुख नहीं मोड़ा। उन महापुरुषों के उद्योगका ही फल है कि, आज हम हजार विपद्ग्रस्त होने पर भी अपने को एकदम भूल नहीं गये हैं। इस में सन्देह नहीं जिन पुरुषोंने आदर्श बनकर भावी सन्तानोंके लिये मनुष्यता का मार्ग प्रदर्शित किया है, वह जग में अमर अमर हैं। कहना नहीं होगा ऐसेही महापुरुषों में भारतके एक हितैषी, सच्चे सुधारक, महात्मा महादेव गोविन्द रानाडे थे।

आपका जन्म सन १८४२ ई० के जन-वरी मास में तारीख १८ को हुआ था। आपके पितामह पूना जिले में मामलतदार थे। पिता उस पदको नहीं प्राप्त हो सके। वह नासिक जिलेके निफाड़ ग्राम में एक

मामलतदारके यहां प्रधान मुनीम हुए। अवस्थाके अनुकूल रानाडे की आरम्भिक शिक्षा एक देशभाषाके विद्यालय में दिलाई गयी। आगे पिताने इन्हें होनहार समझ अङ्गरेजी शिक्षाके निमित्त कोल्हापुरके हाईस्कूल में प्रविष्ट कराया। उस समय इनकी आयु ११ वर्षकी थी।

हाई-स्कूलकी शिक्षा पूर्ण होने पर रानाडे बम्बईके एलफिन्स्टन कालेज उच्च शिक्षा प्राप्त करनेको भेजे गये। कालेज में उस समय सर एलकजण्डर ग्रांट प्रिन्सि-पल थे। मिस्टर तैलङ्ग और सर फीरोज शाह मेहताने भी इन्हीं ग्रांट साहबसे शिक्षा प्राप्त की थी। उनसे पढ़ते समय एक दिन रानाडेने वृटिश तथा महाराष्ट्र राज्य की तुलना करते समय अपने निबन्ध में अङ्गरेजी राज्यके दोषोंको दिखाया। इस पर ग्रांट जैसे अनुभवी प्रिन्सीपल बहुत असंतुष्ट हुए। उन्होंने नाराज होकर इनकी छः मासकी छात्र वृत्ति रोक दी। रानाडेने इसकी कुछ परवाह नहीं करके आगे कदम बढ़ाया। सन १८६२ में आपने बी० ए० परीक्षा पास की। उसमें आपका नम्बर

अङ्गरेजी में सार्वश्रेष्ठ आया । उपरान्त सन १८६५ में आपने एम० ए० परीक्षा इतिहास में उत्तीर्ण की । इस परीक्षा में एक स्वर्ण पदक आपको पारितोषिक में मिला । इसी वर्ष आप बम्बई विश्वविद्यालयके सभ्य निर्वाचित हुए । दूसरे वर्ष सन् १८६६ में रानाडे सदम्मान एल० एल० बी० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए ।

पढ़ना छोड़नेके पश्चात बम्बई शिक्षा विभाग में आप मराठीके अनुवादक हुए । कुछ समय बाद रानाडे कोल्हापुर रियासत में "कारबारी„ नियत किये गये । पर अधिक समय उस पदपर आप ठहर नहीं सके । निदान उसे छोड़कर बम्बईके एलफिन्स्टन कालेज में अङ्गरेजी साहित्य के आप प्रोफेसर हो गये । इस पद पर रहकर आपने अपनी योग्यताका परिचय दिया । उपरान्त आपने कानून में जो परिश्रम किया था उसके फलोंके प्राप्तकी इच्छा की । इसी अभिप्रायसे प्रथम बम्बई हाईकोर्टके लारिपोर्टर पदको आपने प्राप्त किया । आगे क्रमशः सबार्डीनेट-जज, प्रेसीडेन्सी-मजिस्ट्रेट एवम हाईकोर्टके

आप जज हुए। हाईकोर्टके जज होकर आपने यह भली भांति प्रदर्शित कर दिया कि भारतवासी न्यायके कार्यको कैसी दक्ष दक्षताके साथ कर सकते हैं। हर एक मामिलेको ध्यानसे श्रवण करना और उसका फैसला लिखते समय अन्याय तो नहीं होता इस बातका भय रखना रानाडे जैसे विचारवान महानुभावका ही काम था।

अनेक संकुचित हृदय भारतीय सरकारी नौकरी प्राप्तकर देशकार्यको 'हौआ' और देश कार्यकर्ताओंसे मिलना अपनी मृत्युका परवाना समझते हैं। महात्मा रानाडेको यह दोष स्पर्श नहीं कर सका था। वह देशहित और जातिहितके कार्यों में बराबर योग देते थे और देशहितैषी सज्जनोंसे मिलना अपना गौरव समझते थे। आप राजनीतिक सभाओं में सम्मिलित रहते थे। देशभरकी राजनीतिक सभा, कांग्रेस-सभा में उसके जन्म समयसे ही आप भाग लेते रहे। इसके अतिरिक्त बम्बई की सार्वजनिक सभाके प्रधान, प्रार्थना- माजके मुख्य सदस्य, भारतक

जातिसुधारक सभाके प्रधान मन्त्री और बम्बई विश्वविद्यालय-सिनेटके आप सुयोग्य सभासद् थे। रानाडेके धर्म सम्बन्धी विचार प्रार्थना समाजके अनुकूल थे। ईश्वरके अस्तित्व पर आपका विश्वास था। आपका कहना था, "ईश्वर एक है, सर्वव्यापी है और हमारे भले बुरे कामों को वह देखता है।„ रानाडे अन्त समय तक विद्यार्थी बने रहे। आप सदैव सर्व प्रकारका ज्ञान प्राप्त करनेको तैयार रहते थे। कभी एक मिनट भी अपना समय व्यर्थ नहीं खोते थे। इसी से वह अनेक विषयोंके अच्छे ज्ञाता थे। संस्कृत, मराठी और अङ्गरेजी इन भाषाओं में आपने खूब अभ्यास किया था। मराठी भाषा में आप का लिखा "मराठोंका इतिहास„ आपकी इतिहास योग्यता का अनुपम परिचय देता है। खेदका विषय है कि इस पुस्तक को समाप्त करते न करते आपका शरीरांत हो गया। जो हो, रानाडे अर्थ-शास्त्र और इतिहास के अच्छे ज्ञाता थे। आपकी रची हुई, "अर्थशास्त्र, निबन्धावली„ बड़े काम की पुस्तक है। औद्योगिक उन्नति

में रानाडे सदैव दत्त चित्त रहते थे । बम्बई प्रान्त में पहले पहल आपनेही स्वदेशी आन्दोलनका झण्डा उठाया था ।

सामाजिक सुधारोंकी ओर भी आपका ध्यान पूरा था । आप समुद्रयात्राके पक्षपाती थे, किन्तु वहाँसे लौटकर प्रायश्चित करना आवश्यक समझते थे "समाज सुधार,, विषय पर आपके कितने ही भाषण हुए थे । भारतकी आर्थिक दशापर विचार कर आपने कहा था,—"कल कारखाने भारत में ही खोले जाँय । भारतका कच्चा माल विदेशोंको भेजना बन्द कर दिया जाय । यहांके निवासी जबतक कला-कौशलकी उन्नति न करेंगे तबतक इस देश की आर्थिक दशा न सुधरेगी। आप भूमि पर सरकारी कई नियमों को तथा जमीन्दारी आदि के हकोंको कृषि की उन्नति का बाधक बतलाते थे । आप कहते थे सरकार कृषकोंसे कर ले पर भूमिका स्वामी उन्हीं को रखे तभी यहां की खेती अच्छे ढङ्गकी हो सकती है ।,,

महात्मा महादेव गोविन्द रानाडे अपने वचन एवम् विचारोंके दृढ थे । जिस

बातको कहते थे, उसे अवश्य पूर्ण करते थे। आपको वेषभूषासे घृणा थी। रानाडे सदैव देशी पोशाक पहनते थे। कहते हैं, आप सदैव कचहरी पैदल जाते थे और कभी एक मिनटकी देर नहीं होती थी। आप प्रसिद्धि प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखते थे। रानाडे प्रत्येक कार्य शान्तिसे किन्तु मुस्तैदीके साथ करते थे। आपका बर्ताव जैसा घरवालोंके साथ था वैसेही नौकर चाकरोंके साथ था।

बम्बईके प्लेगका समय किसीको नहीं भूले था। उस भयंकर समय में प्लेगग्रस्त होने पर इष्ट मित्रों की कौन कहे बाप बेटेको, बेटा बापको, स्त्री पुरुषको पुरुष स्त्री को देखनेकी इच्छा नहीं करता था। छुआछूतके भयसे, प्लेगी कर्मचारियोंके डरसे; प्रेमीसे प्रेमी प्लेगग्रस्त रोगी को मनुष्य पाससे अलग निकाल कर बाहर कर देता था। उसी समय रानाडे का एक नौकर प्लेगसे बीमार पड़ गया। प्लेग कर्मचारी उसको अस्पताल ले गये। रानाडे उसे अस्पताल स्वयम देखने गये और कई बार अपनी स्त्रीको भी भेजा। आप स्व-

क्षावके बड़े प्रबल थे । इस कारण आपके अनेक मित्र आपको "ऋषि" कहा करते थे । रानाडेकी दयालुताके सम्बन्ध में इतना ही याद रखना यथेष्ट होगा कि "एक दिन एक साधारण मनुष्य आपके पास आ खड़ा हुआ। आपने उससे उसके आने का कारण पूछा। कहा बैठ जाओ । उसको बैठनेकी हिम्मत नहीं पड़ी । आपने फिर कहा बैठ जाओ विशेष आग्रह करने पर वह जमीन पर बैठ गया। आगे उसने अपने कष्ट की कहानी कह सुनाई । कहानी म्युनि-सिपल्टीके कर्मचारियों द्वारा सताये जाने की थी। रानाडे ने उसकी सब बातों को सुनकर उसे ढारस दिया। कहा—"घबड़ाओ नहीं, धैर्य धरो, हम तुम्हारे कष्ट, निवारण का उपाय करेंगे । यह कह कर उसे बिदा किया। आगे कचहरी जाने के पहले म्युनि-सिपल कमिश्नरके पास गये और उसे कर्मचारियोंके पञ्जे से बचाया । ऐसे परम अद्भुत दयालु महात्माका गत १९०१ ई० के पहले प्रथम मास जनवरी में १६ तारीख को हम लोगोंसे बिछोह हो गया। श्रीयुत गोपाल कृष्ण गोखले रानाडे महोदय का

अपना गुरू मानते थे। आपका कहना था, "हमारे जीवन-सुधारका एकमात्र कारण रानाडे महोदयकी शिक्षा दीक्षा थी,,।

पाठक! महादेव गोविन्द रानाडे महोदय का जीवन चरित्र हम लोगोंको शिक्षा देता है, कि भारत जननीका सच्चा सुपूत वही है, जो हजार उच्च पदस्थ होने पर भी कभी अपने देश, अपनी जाति और अपने सहवासियोंको नहीं भूल जाय। सरकारी नौकर होकर भी राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक व्यवसायिक आदि देशहित साधक कार्यों में योग देनेसे कभी मुख नहीं मोड़े। विदेशी फैशन और सभ्यताके रङ्ग में नहीं डूबकर अपने प्राचीन वेश में रहकर योग्यता को अपने कार्यों द्वारा प्रकाशित करे। सरलता और दयाको अपना प्रधान भूषण रखे। प्रत्येक कार्यको करते समय इस बातका ध्यान रखे कि ईश्वर हमारे अच्छे बुरे कर्मोंको देख रहा है।

पंडित जितबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
नवलकिशोर-प्रेस [illegible] [illegible] लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

अभ्युदयकी ग्रन्थमाला रत्न ३

महाराज युधिष्ठिर ।

सन् १९११ ई०

महाराज युधिष्ठिर

हस्तिनापुराधीश राजा पाण्डुके युधिष्ठिर जेष्ठ पुत्र थे । कुन्तीके उदरसे इनका जन्म हुआ था । भीम और अर्जुन इनके सहोदर भ्राता थे । नकुल तथा सहदेव युधिष्ठिरके सौतेले भाई थे। उनका रानी माद्रीके उदरसे जन्म हुआ था । पाण्डुपुत्र यह पांचो भाई पांडव नामसे प्रसिद्ध हैं । महर्षि द्रोणाचार्यजीने इनको अनेक शास्त्रों की शिक्षा दी थी।

संयोगवश राजा पाण्डुसे ब्रह्महत्या हो गयी । वह राज्य अपने अन्ध भ्राता धृतराष्ट्र को देकर वन चले गये । धृतराष्ट्रके कौरव नामक १०० पुत्र थे । वह आरम्भसे ही पाण्डवोंके साथ ईर्षा द्वेष रखते थे। जब युधिष्ठिर बड़े हुए तब धर्मशास्त्रकी आज्ञानुसार राजा धृतराष्ट्रने उनको युवराज नियत किया । इसपर दुर्योधन आदि कौरवोंने विरोध किया । निदान लाचार होकर धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको १४ वर्षका

वनवास और कौरवोंमें सबसे जेठ दुर्योधन को युवराज पद दिया।

वनवासके दिनों युधिष्ठिरके छोटे भाई अर्जुनने स्वयम्वर विधिसे द्रौपदीके साथ विवाह किया उसको निज माता की आज्ञानुसार पांचों पाण्डवोंने अपनी पत्नी बनाया। वनवासके १४ वर्ष व्यतीत होने पर पाण्डवोंने अपने ससुर पञ्चाल नरेश राजाद्रुपदकी सहायता पाकर धृतराष्ट्रसे राज्य बांट देनेके लिये प्रार्थना की। राज्य बांट दिया गया। बटवारे में पक्षपातसे कौरवोंको बड़े २ नगर तथा धनशाली बस्तियां मिलीं। पाण्डवोंको जङ्गल, ऊसर तथा उजाड़ खंडहर दिये गये। जो हो राज्य बट जाने पर राजा युधिष्ठिर सिंहासन पर बैठे। उन्होंने यमुना तट पर नवीन नगर इन्द्रप्रस्थ बसाकर अपनी राजधानी बनाया। इन्द्र प्रस्थके प्राचीन खंडहर दिल्लीसे १२ कोसके फासले पर दक्षिणकी ओर आज भी वर्तमान हैं।

१६ वर्ष राजकाज करनेके पश्चात युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया। अब युधिष्ठिर, महाराज-उपाधिसे प्रख्यात हुए। और

देश देशान्तरों में उनका यश फैल गया। महाराज युधिष्ठिरका वैभव कौरवों को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने अपनी राजधानी हस्तिनापुर में एक द्यूत सभा स्थापित की। उसमें युधिष्ठिरको भी बुलाया। युधिष्ठिर पासा खेलकर उक्त सभामें अपना सर्वस्व हार गये। अन्त में यदि धृतराष्ट्र आकर शान्ति स्थापित न कराते तो घोर उपद्रव मच जाता।

उपरान्त पाण्डवोंको १२ वर्ष के लिये बनबासकी फिर आज्ञा दी गयी। उस में एक वर्ष अज्ञात बनवास रखा गया। बनबासके समय कौरवों को नष्ट कर देनेके लिये अनेक उपाय किये गये किन्तु पांडव सकुशल बच गये। बनबाससे लौटकर पाण्डवोंने अपना राज्य फिर मांगा। कौरवोंने उनका राज्य वापिस देनेसे अस्वीकार किया। यही भारतके महाभारत का कारण हुआ। कविचन्द्रकृत पृथ्वीराज राजाके लेखानुसार ८१४ गत कलि में महाभारत युद्ध कुरुक्षेत्रके भारी मैदान में १८ दिन पर्यन्त हुआ है। इस युद्ध में भारत के सब राजा महाराजा एक न एक पक्षके

तरफदार थे। अतएव महाभारत में समस्त शूरवीरोंका होम होकर भारतका प्राचीन गौरव नष्ट हुआ। अन्तमें कौरवोंकी हार हुई। दोनों दलोंमेंसे केवल लिन्न १० मनुष्य बच रहे।

पांचों भाई पाण्डव, श्रीकृष्ण, सात्यकी कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा। राजा, महाराजा तथा स्नेही कुटुम्बियों का यह लहट्टल युद्धमें सफाया देखकर महाराज युधिष्ठिर को वैराग्य हुआ। किन्तु श्रीकृष्णजीके बहुत समझाने पर उनका चित्त सावधान हुआ और राजसिंहासन पर विराजे। पश्चात महाराजने अश्वमेध यज्ञ कर ३४ वर्ष पर्यन्त भारत भूमिका एक छत्र धर्मराज्य किया। अन्तमें श्रीकृष्ण भगवानके परलोक-गमनका समाचार पाकर महाराज बहुत अधीर हुए और सारा राजपाट अपने पौत्र परीक्षित को सौंप दिया, आप पांचों भाई रानी द्रोपदी सहित दक्षिण, गुजरात, पञ्जाब, द्वारिका प्रभृति स्थानों में रोते और घूमते फिरे। पश्चात हिमालय पर्वत पर जाकर बर्फ में आप सीज गये। लिखा है, बहु-

थाके अर्थ में चलते चलते महाराज युधिष्ठिर गुप्त हो गये ।

"धृतिक्षमा" आदि धर्मके १० लक्षण महाराज युधिष्ठिर में पूर्णरीतिसे विद्यमान थे। महाराज कभी झूठ नहीं बोले। उन्होंने कभी कोई कार्य धर्म विरुद्ध नहीं किया। इसी कारण वह धर्मावतार नामसे प्रसिद्ध हुए। चन्द्रवन्शका राज्य केवल ३० पीढ़ी तक महाराज युधिष्ठिर के पीछे चला। महाराज युधिष्ठिर युगान्तरके समय में हुए थे। समय उनके समय में ही बहुत पलटा खा चुका था। उनके आदि समयसे अन्तके समय में भेद हो गया था। अन्तके समयके मनुष्योंमें आदिके समयके मनुष्योंसे आकाश पातालका अन्तर हो गया था।

इस-अन्तरके सम्बन्धमें महाराज युधिष्ठिरके समयकी महाभारतमें एक आख्यायिका है। आजकलके न्यायालयों में उस को नजीर कहते हैं। नजीर इस भांति है।

"महाराज युधिष्ठिरके राज्य में किसी मनुष्यने अपना पुराना मकान बेचा। मोल लेनेवाला जब मकान खनवाने लगा तब उसमें बहुत सा गड़ा हुआ धन निकला।

मकान मालिकने तुरन्त उसकी खबर उस मकानके पूर्व स्वामीको दी। कहा यह धन आपका है। इसको लेजाओ। पूर्व स्वामीने उत्तर दिया, मैं मकान बेंच चुका। इस कारण उस धन में मेरा कुछ भी स्वत्व नहीं है। योंही दोनों में झगड़ा हुआ। एक कहता था मेरा धन नहीं है, दूसरा कहता था मेरा धन नहीं है। झगड़ते २ न्यायालय में दोनों ने जाकर कहा कि, पराये धनको हम नहीं ले सकते।

महाराज युधिष्ठिर ने समय परिवर्तन की परीक्षाके लिये झगड़े का निपटारा नहीं करके उस धनको राजकोषमें धरनेकी आज्ञा दी। साथ ही वादी, प्रतिवादी से कहा कि यदि तुम में से किसीको इस पर दावा हो, तो फिर विचार कर आना। थोड़े ही वर्षों बाद समय ने पलटा खाया। संसारके लोगोंकी नियत में फरक आने लगा। उन दोनों आदमियों पर भी समयका असर पड़ा। दोनों ही अदालतमें उपस्थित होकर प्रार्थी हुए। वेचनेवाला अब कहता था,– मैंने मकान वेचा है। उस में गड़ा हुआ जमीनका धन नहीं वेचा है। मोल लेने-

वाला कहता था, जब मैं मकान मोल देचुका तो बेचने वाले का उसकी किसी चीज पर कुछ अधिकार नहीं रहा।"

तात्पर्य यह कि, महाराज युधिष्ठिरके समयसे लोगोंकी नियत में धीरे २ अन्तर पड़ने लगा था। आजकी जो दशा है, उसका नमूना आज कलकी अदालतीकार-रवाई देखने से प्रत्यक्ष होता है। महाराज युधिष्ठिर का सम्बन्ध विक्रम सम्वतसे पहिले यहां प्रचलित था। धर्मावतार महाराज युधिष्ठिर के जीवन चरित्रसे संसार को यह शिक्षा मिलती है कि महाभारत जैसे घोर युद्धको करके भी भारत जैसे अति विस्तीर्ण देशका शासन हाथ में लेकर भी राजा से प्रजा पर्यन्त प्रत्येक मनुष्य धर्मकी पूर्णरीति से रक्षा कर सकता है। अधिक कार्य अथवा अधिक उत्पातके कारण-धर्म, न्याय, शील इत्यादिकी रक्षा नहीं कर सकते, यह लोगों का कहना एकदम बहाना है। करनेवाले के लिये सब समय सब कुछ साध्य है। हजार समय बदल गया पर महाराज युधिष्ठिरने अपना धर्माचरण ज्योंकात्यों कायम रखा।

इसी कारण धर्मावतार महाराज युधिष्ठिर का नाम आज भी प्रातः स्मरणीय है।

महाराज युधिष्ठिर के राज्य में प्रजा सब प्रकार सुखी थी। कोई किसी का ऋणी नहीं था। सब लोग परिश्रम कर अपना निर्वाह करते थे। कोई किसी की सम्पत्ति हड़प नहीं किया चाहता था। जैसा सत्य वादी राजा था „ इसी प्रकार उसकी प्रजा थी। राज्यमें कोई अतिदीन दरिद्र नहीं था। इसी कारण राज्यके एक छोरसे दूसरे छोर तक सारी प्रजा राजभक्त थी। सारी प्रजा राजाके गुण गान में मस्त थी। राजा को प्रजा का विश्वास था। प्रजा को राजा का विश्वास था। गऊ ब्राह्मणों की पूर्ण प्रकार रक्षा होती थी। मेघ समय पर जल देते थे। खेतों में खूब अन्न पैदा होता था। दूध, दही, घी, अन्न इत्यादि समस्त चीजोंकी अधिकता थी। राम राज्य का सुख भारतवासी अनुभव कर रहे थे।

पण्डित विद्याबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हिवेट रोड लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

सत्यवादी ग्रन्थमाला रत्न ६

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

सन् १९२१ ई०

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र।

कवि चूड़ामणि हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक श्रीमान बाबू हरिश्चन्द्रका जन्म सन् १८५० ई० में ९ सितम्बर को हुआ था। आपके पिता बाबू गोपाल चन्द्र प्रसिद्ध कवि थे। पाँच वर्ष की अवस्था में हरिश्चन्द्र मातृहीन हो गये। ७ वर्षकी आयुमें पिताका भी स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार माता पिताके सुखसे आप एक प्रकार वञ्चित रहे। कुछ बड़े होने पर बनारस क्वीन्स कालिज में आपने हिन्दी और अङ्गरेजी पढ़ी। चौधरी लोकनाथ जी उस समय उक्त कालिज में हिन्दी के अध्यापक थे। आप कहा करते थे,—"हरिश्चन्द्र एक होनहार लड़का है।" हरिश्चन्द्र बाबूको कविता रचनेकी रुचि बालकपनही से थी। आपकी बाल्यावस्था की कविता पढ़कर चकित होना होता है। आगे ज्यों २ आप बढ़ते गये त्यों २ आपका कविता प्रेम अधिक बढ़ता गया। अधिक क्यों बड़े २ विद्वानोंने आपको हिन्दीका 'कालिदास, कहना उचित समझा है। बाबू हरिश्चन्द्र की कविता अत्यन्त सरस होती थी। आप प्रायः सभी भाषाओं में कविता

रखा करते थे। कहते हैं, तामिल और तैलङ्ग इन दो भाषाओंको छोड़ कर भारतेन्दु बाबू का भारतकी प्रायः अन्य सभी भाषाओं पर पूर्ण अधिकार था। (संस्कृत, फारसी, बङ्गला, गुजराती मराठी आदि भाषाओंसे आप सुपरिचित थे।) आपकी विद्वत्ता, बहुज्ञता, नीतिज्ञता तथा विलक्षण बुद्धिका परिचय आपकी बनाई पुस्तकोंसे विदित है। हिन्दी के लिये तो मानो भारतेन्दु बाबूने जन्म ही लिया था। आपने १६ वर्षकी अवस्था में "कविवचन-सुधा" नामक पत्र निकालना आरम्भ किया। १७ वर्षकी अवस्था में "चौखम्भा-स्कूल" नामक विद्यालय बनारस चौखम्भा महल्लेमें खोला। उपरान्त कई पत्र तथा पत्रिकाएँ निकाली। पत्र पत्रिकाओंके अतिरिक्त भारतेन्दुजीकी बनायी लिखी प्रायः १७५ पुस्तकें हैं। बाबू हरिश्चन्द्र जी निरे कवि नहीं थे। आप देशकार्यों में पूर्ण प्रवेश किये हुए थे। सन १८७० में आप आनरेरी मजिस्टर हुए। ६ वर्ष पर्यन्त आप म्युनिसिपल कमिश्नर रहे। आगे लोगोंके संस्कार सुधार के निमित्त तथा हिन्दी की उन्नति

के निमित्त आपने हिन्दी-डिबेटिङ्गक्लब, काव्यसमाज, अनाथ-रक्षिणी सभा आदि संस्थाएँ स्थापित कीं। इनके अतिरिक्त भारतकी प्रायः समस्त प्रतिष्ठित सभा समाजों में किसी के सभ्य, किसीके सभापति और किसीके आप मन्त्री थे। आपकी वक्तृता बड़ी सरल एवं हृदयग्राहिणी होती थी अन्य प्रान्तों में भी आप व्याख्यान देने जाया करते थे। भारतेन्दु बाबूके लेख और व्याख्यानों में अगाध देशभक्ति झलकती थी। आप विद्या और विद्वानोंका सम्मान करना अच्छी प्रकार जानते थे। शायद ही कोई ऐसा पण्डित रहा हो जिसने आपसे सम्मान नहीं प्राप्त किया हो। महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी जीके साथ आप एक दिन राजघाट जहां पुल बध रहा था, गये। लौटते समय द्विवेदी जीने यह दोहा कहा,—

"राजघाट पर बँधत पुल जहँ कुलीनकी ढेरि।
आज गये कल देखिके आजहि लौटे फेरि॥

इस दोहे को सुन भारतेन्दु जी अति प्रसन्न हुए और पण्डित जी को १००) पारितोषिक दिया। इसी भाँति पंडित

परमानन्दजी का "बिहारी-सतसई" की संस्कृत टीका रचने पर आपने ५००) पारितोषिक दिया था। आप कालिज और स्कूलों में जाकर योग्य विद्यार्थियोंका समय समय पर उचित सम्मान किया करते थे। उनकी उदारताका अन्त नहीं था। आप बम्बई, बंगाल, मद्रास आदि अन्य प्रान्तों को भी परीक्षोत्तीर्ण विदुषी महिलाओं तथा गुणी पंडित और होनहार विद्यार्थियोंके सम्मानार्थ पारितोषिक भेजा करते थे। हिन्दी गद्य के जन्मदाता लल्लू लालजी अवश्य हुए, किन्तु बाबू हरिश्चन्द्र जीका ही कार्य था कि जिन्होंने हिन्दीको नवीन भूषणों से विभूषित कर इस गौरव-स्थानको पहुँचाया। यही कारण है कि वह आज हिन्दी संसार में सर्वमान्य होकर पूज्य दृष्टि से देखे जाते हैं। विद्वानों का सत्कार आप जैसा करते थे, उससे प्रसन्न होकर काशीके पंडित वर्गने अपने हस्ताक्षरों युक्त एक प्रशंसा पत्र आपको दिया था। उस पत्र में एक यह दोहा लिखा था,—

"सब सज्जन के मानको, कारण एक हरिचंद।
जिमि स्वभाव दिनरैनको, कारण नित हरिचंद,"

आगे सन १८८९ ई० में पंडित रामशंकर व्यास के प्रस्ताव पर हिन्दी पत्र, पत्रिकाओंके सम्पादकोंने मिलकर आपको "भारतेन्दु" उपाधिसे विभूषित किया था। हिन्दी में नाटक लिखनेका प्रचार बाबू हरिश्चन्द्र जीने ही आरम्भ किया था। आपके लिखे लगभग १९ नाटक हैं। भारतेन्दु बाबू जैसे देशभक्त थे वैसेही आप राजभक्त भी थे। प्रिन्स-आफ-वेल्स जिस वक्त भारतवर्ष पधारे थे, उस समय आपने अनेक भाषाओं में छन्द रचना कर आपका स्वागत किया था। इसी भांति ड्यूक-आफ़-एडिनबराके काशी आनेपर हरिश्चन्द्रजीने अनुपम राजभक्तिका परिचय दिया था। वह आपके इस व्यवहारसे बहुत प्रसन्न हुए। आपकी पुस्तकोंके एक २ अक्षरसे राजभक्ति टपकती है। वह अपना मन तन, धन, मान एवम् प्रतिष्ठा सब कुछ ही देशहितके लिये सदैव निछावर करना अपना कर्तव्य समझते थे। यही सब उनमें महान गुण देख भारतके राजा, महाराजा, नवाबही नहीं वरन यूरप, अमरीका आदि देशोंके प्रसिद्ध पुरुष भी आपका सम्मान

करते थे । हरिश्चन्द्र बाबूका धर्म वैष्णव था। उनमें भगवत्प्रेम अनुपम था। आप का सिद्धान्त था,—"धर्म विश्वास मूलक है ।„ सत्य शील नम्रता, दया, अहिंसा प्रभृति-को आप धर्मके लक्षण मानते थे। आप कहते थे,—"यदि मेरे पास धन होता तो मैं चार कार्य अवश्य करता,—

(१) षट ऋतु प्रदर्शक बगीचेके भीतर श्रीठाकुर जीका स्थापना (२) यूरप, अमरीका आदि विदेशोंका भ्रमण (३) विशुद्ध हिन्दी शिक्ष विद्यालय का स्थापन और (४ शिल्पकला का महाविद्यालय खोलता ।„ इन मनोर्थोंकी अभिलाषा रखते हुए आप राग, वाद्य, रसिक समागम, चित्र, विचित्रवस्तु तथा पुस्तकों में अपना आमोद प्रमोद प्रगट करते रहते थे। सन १८८२ ई० में आप उदयपुर के महाराना साहबसे मिलने गये थे । वहांसे लौटते समय शीतऋतुकी शीतने आपको दबा लिया । आप श्वास रोगसे ग्रस्त हो गये । यही दुष्ट रोग आगे चलकर सन १८८५ में आपके प्राणोंका घातक हुआ अन्तिम दिन ६ जनवरी को अन्तःपुर से

अन्त में एक दासीने आकर आपसे पूछा,--"आपका स्वास्थ्य कैसा है ?„ आपने उत्तर में कहा,-"ज्वर, शूल और खांसीकी रातें बीत गयीं। अब आज रातको अन्तिम यवनिका गिर कर तमाशा खतम होगा।„ उसी रातको १० बजे "श्रीराम, श्रीकृष्ण कहते कहते आप इस संसारसे नाता तोड़ कर चल दिये।

भारतेन्दु बाबूके पूर्व इस प्रान्त में संस्कृत फारसी और अङ्गरेजीके साधारण रूपसे पठन पाठन की चर्चा थी। तब हिन्दी भाषाके ग्रन्थोंकी रचना, उनका प्रकाश करना तथा उन्हें पढ़ना एक तुच्छ काम समझा जाता था। बाबू हरिश्चन्द्रके उद्योगसे प्रान्तकी ही क्यों इस देशभरकी रुचि शनैः २ इस ओर बढ़ी। सब लोगोंमें हिन्दी लेख पढ़नेकी अभिलाषा उत्पन्न हुई। फिर तो उत्तरोत्तर क्रमशः कितने ही अच्छे २ ग्रन्थकार हुए और उन ग्रन्थोंको छापनेसे लाभ होते देख कितनेही उन्हें छापकर प्रकाशित करनेवाले मिलने लगे। बाबू हरिश्चन्द्रके ग्रन्थों का जिन्होंने भली भांति अध्ययन किया है, वह-"हिन्दी-

सम्राट„ उपाधि से उन्हें विभूषित करनेमें जरा भी संकुचित नहीं होंगे। वास्तव में हमारी मातृभाषा हिन्दीके इस युग में वह सम्राट ही हुए हैं। "हिन्दी साहित्यका संक्षिप्त इतिहास„ नामकी पुस्तकमें हमारे आत्मीय मित्र बन्धुओंने उनके सम्बन्ध में अपना भाव प्रगट करते हुए लिखा है,—
"भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने सम्वत १९४१ पर्यन्त प्रायः १९ वर्ष हिन्दी में जैसा चमत्कार दिखाया वैसा······प्रायः १२५ वर्षोंसे देखने का सौभाग्य······ नहीं हुआ था······इस १२५ वर्षोंके बीच भाषामें अनेक परमोत्कृष्ट कवि हुए पर नवरत्नों में परिगणित होने का सौभाग्य किसीको प्राप्त न हो सका······गद्य पद्य एवम् नाटकके यह सब से बड़े पोषक और सहायक हो गये हैं। वर्तमान गद्यका इन्हें जन्मदाता कहना चाहिये। इनकी गद्य एवम् पद्यावली सभी रचनाओं में माधुर्य कूट कूट कर भरा है······इन में प्रेम एवम् जातीयता की मात्रा वास्तव में अगाध थी······इन्हींके प्रसादसे वर्तमान हिन्दीकी इतनी उन्नति हुई है।„

पंडित प्रियबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हिवेटरोड [illegible] लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

जनवासी ग्रन्थमाला रत्न २

सिकन्दर आजम

सन् १९२२ ई०

(७३)

सिकन्दर आजम।

सिकन्दर यूनान देशान्तर्गत मकदूनियां प्रदेशके बादशाह फैलकूसका पुत्र था। उसका जन्म ईसासे ३५६ वर्ष पूर्व हुआ था। उसने अपने पितासे हरक्यूलसकी और मातासे ऐचिलस की लीला की कहानियों को सुना और उनका अनुकरण कर अपनी उन्नति कीथी। वह बाल्यावस्था में महान तत्ववेत्ता अरस्तू के निरीक्षण में रखा गया। उनसे उसने गंभीरतासे बिचार करने की, दृढ़ता धारण करने और राज्यप्रबन्ध करनेकी शिक्षा ग्रहण की। अन्य बिद्वानोंसे यूनानकी अद्भुत बात सीखीं। उसके पिताने उसे तत्परतासे काम करनेकी शिक्षा दी। चौदह वर्ष की अवस्था में उसने एक घोड़ा पाला। उस पर उसके अतिरिक्त अन्य कोई सवार होने का साहस नहीं कर सकता था। बीस वर्ष की अवस्था में वह गद्दी पर बैठा और सम्पूर्ण यूनानको विजयकर अपने आधीन कर लिया। ईसाकी सनके ३३५ वर्ष

पूर्व उसने एशिया पर आक्रमण किया।
श्याम, रूम, काबुल एशियाई कोचक, मिस्र
और फारस आदि देशों को जीत कर भारत
के जीतने को अग्रसर हुआ। इस प्रकार
सिन्धु नदी पर आया। उसको पारकर भारत
में उपस्थित हुआ। उस समय भारत में कोई
चक्रवर्ती राजा न था। सम्पूर्ण राज्य छोटे
राज्योंमें विभक्त था। सिकन्दरके साथ एक
लाख बीस हजार सेना थी। पंजाब के
राजाओंको आधीन करते हुए सिकन्दर
आगे बढ़ा। हस्तिनापुर अर्थात दिल्लीके पूर्व
पुरु राजा राज करता था। सिकन्दरने उससे
भेंट करने की इच्छा प्रकट की। उस वीर
राजाने उसके निकट जाना उचित न
समझा। भेंटका संदेशा पाकर उत्तर भेजा,
मैं सीमापर आप से भेंट करनेके लिये तत्पर
हूँ। वहां मैं सेना सहित उपस्थित हूँगा।
इसके पश्चात वह अपनी पचास सहस्र
सेना लेकर सिकन्दरसे युद्ध करने के लिये
झेलम नदीके किनारे जा डटा। इधर सिक-
न्दर भी झेलम पर राजाकी सेनाके सम्मुख
आया। किन्तु राजाकी सेना के सम्मुख नदी
का उतरना कठिन था। इस लिये सिकन्दर
को नदी के दूसरी ओर ठहर कर समय का

प्रतीक्षा करनी पड़ी। उस समय नदी बहुत बढ़ी हुई थी। राजाने हाथियोंकी ऐसी पंक्ति लगा दी थी कि उधर से नदी का पार करना सिकन्दरके लिये असम्भव होगया। पर एक दिन वर्षा की अंधेरी निशा में उस स्थानसे उत्तर की ओर सोलह मील चल कर सिकन्दर ग्यारह सहस्र चुनी हुई सेना सहित नावों के द्वारा नदी को पार कर गया। पहिले तो राजा यही समझा कि केवल सिकन्दरके कुछ वीर इस पार उतर आये हैं किन्तु जब लड़ाई में राज पुत्र काम आया तब राजा को ज्ञात होगया कि सिकन्दर अवश्य उतर आया है। अतः राजा ने अपनी सेनाको साथ लेकर उस पर आक्रमण किया। राजा की सेना में २०० हाथी और तीस सहस्र पैदल थे। यद्यपि राजाके सैनिक वीरथे किन्तु सिकन्दरके साथ सेना अधिक थी। लड़ाई घमासानकी हुई। सिकन्दर की सेना का एक भाग उसके आ- धीन और दूसरा भाग उसके चतुर सेनापति क्रेटिरसके आधीन था। जिस समय सिकन्दर और पुरुसे घोर संग्राम हो रहा था, उसी समय क्रेटिरसने अचानक नदी पार कर पीछेसे राजा पर आक्रमण कर दिया। राजा

की पराजय का कारण है टिरास का यही कपट युद्ध हुआ। राजाने बड़ी वीरतासे युद्ध किया। इसके दो पुत्र युद्ध में काम आगये किन्तु युद्ध से विमुख न हुए। अन्त में वह विशेष घायल होकर युद्धमें पकड़े गये। जब वह सिकन्दरके सन्मुख लाये गये तब उन्होंने सिकन्दरसे पूंछने पर कहा कि "मुझे कुछ नहीं कहना है। आप मेरे साथ वैसा ही बर्ताव करें जैसा राजा को राजाके साथ करना चाहिये।„ राजाकी इस वीरता और गंभीरता को देखकर सिकन्दर उसकी वीरता पर बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें बन्धन मुक्त कर दिया। साथही उनके राज्य के अतिरिक्त और भी राज्य उन्हें दे दिया। सत्य है वीर की प्रतिष्ठा वीर ही करता है। पंडितका श्रम पंडित ही जानता है। यह युद्ध ईसवी सन से ३२६ वर्ष पूर्व हुआ था। इस युद्ध के स्मारक स्वरूप युद्ध-स्थल के निकट सिकन्दर ने दो नगर बसाये। ब्रूकिफल नामक नगर आज दिन भी झेलम शहर के निकट बसा हुआ है।

पश्चात सिकन्दर ने अनेक प्रान्तोंको अधिकृत किया। अनेक भारतीय नरेशोंने

सिकन्दरको कर स्वरूप हाथी भेंट किये थे। सकदूनिया वासियोंने उनको युद्ध में काम लानेकी विधि सिकन्दरको सिखायी। इसके पूर्व वह हाथियोंको लड़ाईके काम में लाना नहीं जानता था। सिकन्दर भारत में आगे बढ़ना चाहता था किन्तु देशसे दूर होने के कारण उसकी सेनाने और आगे बढ़ना स्वीकार नहीं किया। इसका एक यह भी कारण बतलाया जाता है कि उस समय मगध देशका राजा महानन्द बड़ा प्रतापी था। उसीके आतंकसे सिकन्दर की सेना ने आगे बढ़नेका साहस नहीं किया। कोईनास नामक सेनापति ने सिकन्दर से सेना का विचार प्रकट किया। उसको सुन कर सिकन्दर को बड़ी ग्लानि हुई। तीन दिन तक डेरा से न निकला। निदान व्यास नदीके किनारेसे खिन्न होकर उसने अपने देशके लिये लौटने की आज्ञा दी। वहां से प्रस्थानित होने के पूर्व ही सिकन्दरने व्यासके दूसरे पार पचास, फीट ऊंचे बारह स्तम्भ बारह देवताओंके नाम से बनवाये किसी २ इतिहासमें सतलजके पाससे सिकन्दरका लौटना लिखा है। कुछ भी हो, वहां से चलकर सिकन्दर चीनाब नदी पर गया

आगे झेलम नदी के पास एक बड़ा दरबार करके राजा पुरु को उसके राज्य पर और अभिसारके राजा को सिन्धुनदी के पूर्व के प्रदेश पर सदाके लिये नियत कर दिया। यहां पर सिकन्दरने सेनाको तीन भागों में विभक्त किया। एक भाग को नावोंके द्वारा और दो को नदीके दोनों किनारों की ओर से पैदल चलने की आज्ञा देकर प-स्थान का डंका बजाया। वह खुद जल मार्ग से चलनेवाली सेनाके साथ हुआ। किनारे से चलनेवाली सेना के साथ क्रेटिरास और हिफेस्टन नामक सेनापति को किया। इस क्रम से प्रस्थित होकर मार्ग में पड़नेवाले देशोंको विजय करता हुआ आठवें दिन वह झेलम और सिन्धुके संगम पर पहुँचा। वहां उसकी सेना की कुछ नावें डूब गईं। उसकी नाव डूबते डूबते बची। स्वदेश को लौटते हुए सिकन्दरने एक छोटे नगर को जो मल्ली नामक जाति के लोगों के अधिकार में था घेर लिया। यहाँ पर एक दीवार थी। उसको नगरवासियों ने शत्रु पर लक्ष्य लगाने को बनाया था। उस दीवार पर सिकन्दर एक सीढ़ी लगा कर चढ़ गया। उसके

पीछे चार और आदमी चढ़ गये। उपरान्त सीढ़ी टूट गई। सिकन्दर दीवार पर खड़ा रह गया। वहांसे वह भीतर मल्ली लोगों के मध्य कूद पड़ा और एक अंजीर के वृक्ष में पीठ अड़ा कर अपनी रक्षा करने लगा। इस समय उसकी छाती में एक बांस घुस गया। उससे उसको मूर्छा आगई। इसी समय उसके चारों साथी भी कूद पड़े। उनमें दो मारे गये और शेष दो उसके पास पहुँच कर अपनी ढालोंसे उसकी रक्षा करने लगे। अब उसकी सेना भी उसकी रक्षा करनेको उसके पास जा पहुँची। इस युद्ध में यद्यपि वह भयंकर रूपसे घायल हो गया किन्तु बच गया। यहां से चल कर वह सिन्धुके उद्गमस्थान पहुँचा। वहाँ से नियार्कस नामक सेनापति के अधीन एक बेड़े को फारसकी खाड़ी का निरीक्षण करने को समुद्र के मार्ग से भेजा। आप समुद्रके किनारे २ थल मार्गसे चला। थल का मार्ग बहुत ही उजाड़ था। इस कारण उसको सेना सहित गर्मी, भूख और और प्यास की कठिन वेदना सहन करना पड़ी। समुद्र स्थल से जानेवाली सेनाओंसे मार्ग में भेंट न

हुई । अतः एक को दूसरी की सहायता न मिली । दोनों सेनाओं को विशेष कष्ट उठाना पड़ा । आगे आर्मेज में दोनों सेनाएं मिली । वहां नियार्कस ने सिकन्दर से जाकर भेंट की । उपरान्त सेना सहित वह फारसकी खाड़ीके सिरे पर सूसा में पहुँचा । वहां एक बड़ा दरबार किया । पश्चात बाबुल को गया । वहां सिकन्दर की बड़ी प्रतिष्ठा हुई । बाबुल में पहुँचने के कुछ सप्ताह पश्चात सिकन्दर को ज्वर आ गया । कई दिनके बाद प्राण निकल गये । मरने के पूर्व सिकन्दर ने अपने किसी उत्तराधिकारी का नाम नहीं लिया । उसने अपनी राजसी अंगूठी अपनी अँगुलीसे उतार कर परडीकस नामक अपने सेनापति को पहना दी । कुछ देर पश्चात शरीर त्याग दिया । सन ईसवीसे ३२४ वर्ष पूर्व अपरैल मास में सिकन्दर की अवस्था ३२ वर्ष की थी । मृत्यु के पश्चात उसके राज्य के खंड होगये । भारत वर्ष से मध्य एशिया तक उसके सेनापति सैल्युकस का राज्य बन गया । उसने सिकन्दरके पश्चात ४२ वर्ष तक राज्य किया ।

पण्डित बिशनबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैवलॉक रोड लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

अवधवासी ग्रन्थमाला रत्न ६

गुरू नानक !

सन् १९२१ ई०

गुरू नानक।

पञ्जाबके अन्तर्गत लाहौर जिलाके तालवाड़ी ग्राम में लाला कालूमलजी खत्री रहते थे। विक्रम सम्बत १५२६ ई० में कार्तिक सुदी १५ को आपके घर नानकका जन्म हुआ। लालाजी उसी गाँवके पटवारी थे।

बाल्यावस्थासे ही नानकजी में ईश्वर सम्बन्धी चमत्कार था। उनकी बुद्धि अति तीव्र थी किन्तु सांसारिक विषयोंसे वह उदासीन रहते थे। उनके पिताजीको इनकी इस उदासीनता का खेद रहता था। वह चाहते थे कि यह सांसारिक विषयों में लिप्त हो जांय। मोलवी और गुरूजीके पास बैठकर नानक जीने थोड़े ही समय में फारसी और हिसाब सीख लिया। अपने शिक्षकोंको समय २ पर नानक जीने अपना अद्भुत चमत्कार दिखाया। अक्षर अक्षर पर ज्ञानकी कविता लिखकर उन्हें मुग्धकर दिया।

कुछ बड़े होने पर पिताजीने बाला नामक सिन्धी जाटके साथ इन को ४०) रुपये देकर व्यापार करनेको बाहर भेजा। जाते समय रास्ते में इन्हें कुछ साधु मिल गये। उन्हें खिलाने पिलाने में नानकने चालीसों रुपये खर्च डाले। उपरान्त खाली हाथ घर लौट आये। पिताजी उनकी यह लीला देखकर बहुत असन्तुष्ट हुए। नाराज होकर उन्हें उनकी बहनके घर सुलतानपुर भेज दिया। वहां पहुँचने पर नानकके बहनोईने सिफारिश करके नवाब दौलतखां लोदीके दरबार में इन्हें खजांची करा दिया।

खजांची रहते समय गुरदासपुर में सुलखनी नाम्नी कन्याके साथ इनकी शादी हो गयी। उससे श्रीचन्द और लक्ष्मीदास नामक २ पुत्र उत्पन्न हुए। इनहीं दो पुत्रोंसे वेदी और उदासी सम्प्रदायकी सृष्टि हुई। श्रीचन्दने वेदी और लक्ष्मी चन्दने उदासी सम्प्रदाय चलाया।

पुत्र होनेके पश्चात गुरूजीके चित्त में विशेष वैराग्य उदय हुआ। निदान

एक दिन घरबार छोड़ जङ्गल को चलते हुए। चलने के पहले सुलखनी को पुत्रों सहित उसके नैहर पहुँचा दिया था। आप अपने २ शिष्यों बाला और मरदानाके साथ उपदेश करते फिरते थे। मर्दाना बहावी मुसलमान था। वह नानक जीके साथ बाजा बजाता था। नानकजी ज्ञानमार्गके भजन गाते थे।

उसी समय मुसलमान लोग तलवारके बल अपने धर्मका संसार में प्रचार कर रहे थे। भारतवर्ष में भी उनका यह प्रचार कार्य जारी था। अतः हिन्दू मुसलमानों में विशेष वैमनस्य फैल जाना सम्भव था। नानक जीने हिन्दू मुसलमान दोनोंको मिलाकर एक कर देना अपना उद्देश्य रक्खा।

गुरू नानकके उपदेशका सिद्धान्त था,—सब जातियों तथा सब वर्णोंके लोगों की उत्पत्ति एक ही ईश्वरसे हुई है। आपस में एक दूसरेके साथ ऊंच नीचका भेदभाव रखना तथा एक दूसरेसे घृणा करना पाप है।

गुरूजी इन्द्रिय दमन और चित्त संयम को सर्वोत्तम मानते थे। हिन्दू मुसलमानोंके मत सम्बन्धी भेदभावको दूर कर वह उनको परस्पर मिलाना चाहते थे। केवल ईश्वरोपासना उनके धर्मका मूल सिद्धान्त था। वह समझते थे कि मतका भेदभाव और जातियोंकी भिन्नता कवल मनुष्यों की कल्पना मात्र हैं। मूर्ति पूजा, देवालय में जाना, यज्ञ करना और संसारमें विरक्त होकर सन्यासी बनना वह आवश्यक नहीं समझते थे। धर्म सम्बन्धी आडम्बरोंका नानक जीने बड़ी युक्तियोंसे खण्डन किया है। उनके खण्डन मण्डनका ढंग ऐसा विलक्षण था कि क्या साधारण और क्या विद्वान किसीको भी उनकी युक्तियों के खण्डन करनेका साहस न होता था।

उस समयके भारतीय संसार में नानकजीने एक प्रकारकी नवीनता उत्पन्न कर दी थी। जो लोग वैराग्य को सब कुछ बतलाकर हिन्दू समाज को एक प्रकार निर्जीव कर रहे थे, इन महात्माने उन्हें भली प्रकार

समझा दिया कि वह अपने कर्तव्यको पालन करते हुए गृहस्थाश्रम में भी बैरागी रह सकते हैं। नानकजीके उपदेशोंका प्रभाव हिन्दू और मुसलमान दोनों पर पड़ा और धीरे धीरे उनके अनेक शिष्योंने उस समयके बादशाह इब्राहीम लोधीसे उनकी शिकायत की। इब्राहीमने उन्हें कैद में छुड़वा दिया। आगे चलकर पानीपतकी लड़ाई में इब्राहीमको बाबरसे पराजय हुई। बाबरके राज्य शासन प्राप्त करने पर नानककी बन्दी गृहसे मुक्ति हुई।

पश्चात जालन्धर जिले में नानकजीने कर्तारपुर नामक ग्राम बसाया। वहां एक बड़ी भारी धर्मशाला बनवाई। वहीं सपरिवार शिष्य समुदाय सहित अपने जीवनका १६ वर्ष शेष-काल बिताया। नानकजी उत्तम साधु थे। उन्होंने अपना समस्त जीवन उत्तम कार्यों में बिताया। प्रायः समस्त हिन्दू तीर्थोंकी यात्रा की थी। मुसलमान तीर्थ मक्का आदिको भी गये थे। इस प्रकार इन महात्माजीने

अपना उज्ज्वल चमत्कार दिखाकर आश्विन कृष्णा १० सम्वत १५९७ में इस असार संसारको त्याग दिया। पहले कह चुके हैं, कि गुरू नानकको हिन्दू मुसलमान दोनों अपना समझते थे। अतः इनके मृतशरीरका कृत्य किस प्रथाके अनुसार किया जाय, इस बातका हिन्दू मुसलमानों में झगड़ा पड़ा। पर चद्दर उठाकर उनकी लाश देखी गयी तो वह किसी को न मिली।

गुरू नानककी जन्मभूमि पर एक मन्दिर बना है। उसको नानकाना कहते हैं। उनके स्थापित सम्प्रदाय को शिक्ख सम्प्रदाय कहते हैं। नानक के पश्चात् ९ गुरू और क्रमशः गद्दी पर बैठे। इस प्रकार कुल १० गुरू हुए,— (१) गुरू नानकजी (२) गुरू अङ्गदजी (३) गुरू अमरदास जी (४) गुरू रामदासजी (५) गुरू अर्जुनजी (६) गुरू हरिगोविन्दजी (७) गुरू हरिराय जी (८) गुरू हरिकृष्णजी (९) गुरू तेगबहादुर जी और (१०) गुरू गोविन्दजी।

यदि पंजाबको वीर भूमि में इन महात्माओंका जन्म न होता तो हिन्दुओं में नवीन शक्तिका प्रचार नहीं होता और न आगे पंजाब केशरी महाराज रणजीत सिंहको स्वतन्त्र राज्यस्थापित करनेका सौभाग्य प्राप्त होता। नानकजीने राज्य स्थापित करनेकी कोई चेष्टा नहीं की और न उनकी उस प्रकारकी अभिलाषा ही थी। उन्होंने केवल आध्यात्मिक ज्ञानका प्रचार किया था, किन्तु आध्यात्मिक ज्ञानके प्रचार से देश में धार्मिक और सामाजिक उन्नति हुई। और जागृतावस्थाका अंकुर उत्पन्न हो गया। उसने संसार की गतिके साथ मिलकर गुरू गोविन्द सिंहके समय खालसा रूपी महावृक्ष बन कर महाराजा रणजीत सिंहके स्वतन्त्र राज्यका फल उत्पन्न किया। सारांश गुरू नानक जीने भारतवर्षका बड़ा उपकार किया और उसके लिये देश उनका ऋणी है। गुरू नानकजी महात्मा कबीरदासके समकालीन हैं। कबीरदास और उनसे काशीजी में

धर्म चर्चा हुई थी। नानकजी हिन्दी के कवि थे। उनकी कविताका कुछ अंश नमूना स्वरूप यहां उद्धृत करते हैं।

जो नर दुख में दुख नहिं माने
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके
कंचन माटी जाने।
नहिं निन्दा नहीं अस्तुति जाके
लोभ मोह अभिमाना।
हर्ष शोकते रहे नियारो
नांहि मान अपमाना।
आशा मनसा सकल त्यागि के
जगते रहे निरासा।
काम क्रोध जेहि परसे नाहिन
तेहि घट ब्रह्म निवासा।
गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्ही
तिन यह जुगति पिछानी।
नानक लीन भयो गोविन्द सों
ज्यों पानी सों पानी॥

इसी प्रकारके छन्दों में नानकजी ने ग्रन्थ साहब, नानकजीकी साखी और अष्टाङ्गयोग नामक ग्रन्थ बनाया है।

पण्डित गिरिजाबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैवलॉक रोड लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

अवधवासी ग्रन्थमाला रत्न ९

बिहारी लाल

सन् १९२१ ई०

बिहारी लाल।

"बिहारी सतसई" के रचयिता कविवर बिहारी लालजी ककोर कं-ज्जीय चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। अनुमानतः विक्रम सम्वत १६६० में बसुआ गो-विन्दपुर ग्राम में मामाके घर आपका जन्म हुआ था। यह ग्राम ग्वालियर के निकट है। आपके जीवन सम्बन्ध में आपकी रची हुई सतसई में यह दोहे मिलते हैं,—

जनम लियो द्विजराजकुल,
सुबस बसे ब्रज आय।
मेरो हरो कलेस सब,
केसव केसव राय॥१॥
जनम ग्वालियर जानिये;
खण्ड बुंदेले बाल।
तरुणाई आई सुघर,

मथुरा कहि ससुराल ॥ २ ॥
संवत सइ सत्र सत्तर छिति,
छठि तिथि बासर चन्द।
चैत मास पख कृष्ण में,
पूरन आनँद कन्द ॥ ३ ॥

बिहारी लालजी १८ वर्ष की अवस्था तक अपने कवि पिता केशव दासजीके साथ बुन्देलखण्ड अन्तर्गत ओड़छा दरबार में रहे। वहां रहते हुये जब उनके पिताका स्वर्गवास हुआ और गद्दीपर दूसरा नरेश भी बैठा, तब बिहारी लाल जी वहां अपना यथार्थ आदर न पाकर अपनी ससुराल मथुरा को चले आये। मथुरा से जयपुर नरेश जयसिंहके दरबार में गये। जयपुर महाराज उन दिनों अपनी एक नवयौवना रानीके प्रेम मे ऐसे मुग्ध थे कि रात दिन रनिवास में पड़े रहते थे। राजकाजकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते थे। महाराज की यह दशा देख बिहारी लालजीने

यह दोहा लिख कर उनके पास पहुँचाया,—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु,
नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही में बिंध्यो,
आगे कवन हवाल ॥ १ ॥

इस दोहेका मतलब समझ महाराज जयसिंह तुरन्त बाहर निकल आये और बिहारी लाल को १०० अशर्फी पुरस्कार में दी। उपरान्त बिहारीलाल जी जयपुर में रहे। वहाँ रह कर आप दोहे बना बनाकर महाराज को दिखाया करते थे। महाराज उनको प्रति दोहा एक अशर्फी देते थे। सम्वत १७१९ में ७०० दोहे बनजाने पर बिहारीलाल जीने सबको एकत्र किया और उस संग्रहका नाम सतसई रखा। सतसई के दोहों पर 'अक्षर कामधेनु, की कहावत घटती है। ४८ मात्राके

छन्द में इतनी सुन्दरताई इतने गम्भीरभावों को भरकर आँखों के सामने मूर्तिमान खड़ाकर देना सहज बात नहीं है । सतसईके दोहों के सम्बन्ध में विद्वान कहते हैं,—

सत सैयाके दोहरा, ज्यों नावकके तीर
देखनके ओछे लगें, करैं घाव गम्भीर

महाराज जयसिंहका प्रेम बिहारी लालके साथ इतना बढ़ गया था कि वह युद्धके अवसर पर भी इन्हें अपने साथ रखा करते थे । सन १६२५ में काबुलकी चढ़ाई पर दोनों साथ ही साथ गये थे । उस समय बिहारीलाल जीने यह दोहा कहा था,—

यों दल काढ़े बलखतें,
तैं जय साह भुआल ।
उदन अघासुरके परे,
ज्यों हरि गाय ग्वाल ॥

आगे सन १६६६ ई० में महाराज

जयसिंहके उद्योगसे महाराज शिवा जी तथा औरङ्गजेबके मध्य सन्धि हो गयी। इस अवसर पर बिहारी लालजीने कहा,—

घर घर हिन्दुनि तुरकनी,
देहि असीस सराहि।
पतिन राख चूँदर चुरी,
तैं राखी जय साह॥

सन १६६७ ई० में महाराज जय सिंहका स्वर्गवास हुआ। उपरान्त कुछ पता नहीं चलता कि बिहारी लाल जी कहां रहे जो हो सतसईके दोहोंसे ज्ञात होता है कि बिहारी लाल जी उच्च कोटिके कवि थे। संस्कृत, फारसी आदि कई भाषाओं के बहुत अच्छे, पण्डित थे। आप कृष्ण उपासक और उदार हृदय थे। उनके भाव बहुत उच्च थे। मत-मतान्तरके झगड़े तथा दुराग्रह को अच्छा नहीं समझते थे। स्वभाव

खरा था। झूठ और खुशामद को नापसन्द करते थे। हिन्दी के शब्दों पर आपका पूर्णाधिकार था। इनके दोहे बोल चाल तथा ऐसे गठे शब्दों में हैं कि उनको पढ़कर मुग्ध हो जाना होता है। साथ ही दोहों में जैसा गम्भीर भाव और अनुभव अर्थ कूट कूट कर भरा है कि बारंबार यही कहना पड़ता है कि विहारी जीने सागरको गागर में भरा है।

सतसई में कुल ७१९ दोहे हैं इन दोहोंकी लगभग २० टीकायें हुई हैं। सभी एक से एक बढ़कर हैं हिन्दी भाषाके महाकवि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जीने इन दोहों पर कुँडलियोंकी रचना की है। दुर्भाग्य वश इस कार्यको वह पूर्ण नहीं कर सके। कृष्ण कविने सतसईके दोहों की टीका कवितों में की है। परमानन्द कविने संस्कृत पद्य में इन दोहों का अनुवाद किया और

संस्कृत में भी इसकी टीका की। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजीने इसकाटी के लिये परमानन्द जीको ५००) पारितोषिक में दिया था। पाठक दोहों पर कृष्ण कविके कवित्तों तथा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रकी कुँडलियों का नमूना देखिये,

दोहा।

घर घर डोलत दीन ह्वै,
जन २ जांचत जाय।
दिये लोभ चसमा चखनि,
लघु पुनि बड़ो लखाय॥

(कृष्ण कविकी सवैया)

ठौरहि ठौर पिचात फिरे
लघुता जितहीं तित आप प्रकासैं
जांचत है सबही पह जाय
बढ़ाय दिये बहु भाँति दुरासैं
लोभको ऐसो दिये चश्मा

नर नैनन में अटके कहुँ नाही
यद्यपि है अति चुलबुली
पर वाहि तक अति दौरत जाती

(कुँडलिया)

खेलन सिखये अलि भले,
चतुर अहेरी मार।
कानन चारी नैन मृग,
नागर नरन शिकार।
नागर नरन शिकार,
करत ये जुलुम सवायल।
अँजन गुनहू दंये,
छुटत फट पट गहिलाघल।
बीन्ह २ हरिचन्द,
रसिक ये मारत खेलन!
बचि फिरि सुधि नाहिं,
भले सिखये यह खेलन

बाबू गिरिजाकिशोरी लाल बाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस ईदगाँव कचौड़ी लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

अवधवासी ग्रन्थमाला रत्न १७

हजरत मुहम्मद

सन् १९२१ ई०

हजरत मुहम्मद।

अरबदेश भारतके पश्चिम छोटी छोटी पहाड़ियोंसे आच्छादित मरुभूमि है। यह देश पहले छोटे राज्योंमें विभक्त था। मारकाट, लूटमारकी देशमें अधिकता थी। न्याय शासनकी कोई ठीक व्यवस्था नहीं थी। अरब लोग मूर्ति पूजक थे। देवता तथा भूत प्रेतादिकी मूर्तियां बनाकर पूजा करते थे। मक्कामें एक अति प्राचीन पत्थर काबा नामसे मन्दिर था। उसमें ३६५ मूर्तियां रखी हुई थीं। अरब लोग उनकी पूजा करते थे। यहां प्रतिवर्ष एक मेला हुआ करता था। अरब लोग उस मासको पवित्र समझते थे। उस महीनेमें युद्ध छोड़कर व्यापार और मेला करते थे।

अरब निवासी अनेक जातिके मनुष्य होते हैं। इनमें कुरेशभी एक जाति है इसी जातिके 'अब्दुल मोतालिब' नामक एक सज्जन मक्का में रहते थे।

अत्यन्त धनवान थे किन्तु उनके
कोई सन्तान नहीं थी। सन्तानकी
इच्छासे उन्होंने मन्दिरमें जाकर मा-
नता की कि यदि मेरे १० पुत्र होवेंगे तो
मैं सबसे छोटे पुत्रको देवताके अर्पण
कर दूं। ईश्वरेच्छासे उनके १० पुत्र
हुए। तब प्रतिज्ञानुसार वह दसवें पुत्र
को मन्दिर में बलिदान करनेको ले
गये। किन्तु ज्योंही उन्होंने बलिदान
करने को खड्ग उठायो त्योंही किसी
देवताने अन्तरिक्षसे आकर उनका
हाथ पकड़ लिया। अब वह ज्योंके
त्यों रह गये। पश्चात ज्योतिषियोंकी
सलाहसे उसके बदले में १०० ऊंटका
बलिदान देकर अपनी प्रतिज्ञा को
पूर्ण किया।

अब्दुल मोतालिबके उक्त दसवें
अर्थात छोटे पुत्रका नाम अब्दुल्ला था।
उनका २५ वर्षकी अवस्थामें व्यापा-
रार्थ गये हुए लौटते समय मदीना में
शरीरान्त हो गया। अब्दुल्लाकी स्त्री
उस समय गर्भवती थी। सन ५७० ई०
में उनके उसी गर्भसे मुहम्मद साहब
का जन्म हुआ। सात वर्षके होने पर

उनकी माता कहीं लेकर गयीं थी। दुर्भाग्यवश वहांसे लौटते समय अबोया शहर में माताजीका देहान्त हो गया। अब महम्मद साहब अकेले रह गये। इस अवस्था में आपके चचा अबूतालिबने आपकी परवरिश की।

महम्मद साहब कुछ पढ़े लिखे नहीं थे किन्तु उनकी स्मरणशक्ति और बुद्धि असाधारण थी। आप व्यापार करना खूब जानते थे। व्यापारी होकर २५ वर्षकी अवस्था में खतीजा नामकी एक ४० वर्षीया धनवान स्त्री से आपने शादी की। उससे मुहम्मद साहबके २ पुत्र और ४ लड़कियां हुईं। दो पुत्रों में एकका नाम कासिम रखा और दूसरेका नाम इब्राहीम। चार लड़कियोंके नाम यह हैं, (१) जेनेब, (२) रुकय्या (३) ओमकोलसुम और (४) फातिमा।

जिस समय यहूदी और इसाइयों में युद्ध चल रहा था, उसी समय मुहम्मद साहबने यह घोषणा दी,—"इस समय मूर्ति पूजासे कुछ लाभ नहीं। एक खोदा और मेरी उपासना करो।"

मैं खुदाका पैगाम लेकर आया हूँ। उपरान्त अपनी स्त्री तथा अपने चचाको इसी मजहब में मुहम्मद साहबने दीक्षित कर उसका विशेष प्रचार करना आरम्भ किया। इस प्रचारके समय उन्हें लोगोंसे कुछ नहीं करनेका सन्देह हुआ। अतः वह १६ जुलाई सन् ६२२ में गुरुवारके दिन रात को मदीना चले गये। उनकी इसी यात्राके दिनसे हिजरी सन् जारी हुआ है। मदीना पहुँच कर आपने एक मसजिद तथा कई मकान बनवाये और कई स्त्रियोंके साथ शादी की। इनमें एक ७ वर्षकी थी।

मुहम्मद साहबके मदीना जाने पर उनके अनेक अनुयायी भी वहां जाकर रहने लगे। धीरे २ आपका मजहब बढ़ने लगा। किन्तु आगे चलकर उन्हें अपने शान्तिमय प्रचारका ढंग बदलना पड़ा। उन्होंने विचार किया कि, शान्तिमय प्रचारकी अपेक्षा बलात्कार से उनके अनुयायियोंकी संख्या अधिक बढ़ेगी। यह समझकर उन्होंने अपनी धार्मिक प्रथाको त्याग कर यह उप-

देश देना आरम्भ किया,—"वीरोंको नम्रताका उपदेश नहीं रुचता। तुम लोग तलवारके बल धर्मका प्रचार करो। युद्ध में विजयी होनेसे लोक में उन्नति होगी, धर्मकार्यकी सिद्धि होगी और मरनेसे मोक्ष होगा।" मुहम्मद साहबके उपदेशसे उनके अनुयायियों में युद्ध करनेका साहस बढ़ा। कुछ लोग मक्काके सौदागरोंको लूटने गये। मुहम्मद साहबने स्वयम ३०० मनुष्योंको साथ लेकर बद्रनगरके अरबोंको लूटा। उस लूट में उन्हें खूब धन मिला। अब और भी आप का साहस बढ़ गया। उपरान्त अपना समस्त जीवन आपने लड़ाई झगड़ों में ही बिताया। इस प्रकार कार्य करने में उन्हें बड़ी सफलता हुई। मुहम्मदी मत खूब बढ़ गया। उनके अनुयायियों में राज्य, कीर्ति और स्वर्ग-प्राप्तिकी इच्छा दिन पर दिन बढ़ती गई। उन्हों ने विरोधियोंको जीतकर अपने मतका प्रचार किया। मक्का में काबा नामक देवालय था। मुहम्मद साहबने उसकी मूर्ति तोड़वा कर उ के स्थान पर

मस्जिद बनवा दी। इसी तरफ मुँह करके आज भी मुसलमान लोग निवाज पढ़ते हैं।

मुहम्मद साहबने अपना महत्व प्रकट करने निमित्त अपनी उङ्गलियों से पानी बहाया, चन्द्रमाके दो टुकड़े कर अपनी आस्तीनोंसे निकाला और जानवर तथा दरख्तोंसे अपने को पैगम्बर पुकरवाया। सन ई० ६३१ में १३ दिनकी बीमारीके बाद केवल फातिमा नामक बेटीको छोड़कर आप इस संसारसे कूचकर गये। फातिमाकी शादी अली के साथ हुई थी। उन्हींके पुत्र हसन और हुसेन थे।

मुहम्मद साहबके प्रचारित धर्म को इसलाम या मुसलमान मत कहते हैं। यह दोनों शब्द अरबी भाषाके हैं। इनकी व्युत्पत्ति अरबीके 'सलम, धातुसे हुई है। उसका अर्थ मुक्ति मुक्त देना है। मुसलिम और ईमान शब्दके योगसे मुसलमान शब्द बना है। उसका अर्थ पूर्ण बिश्वास है। मुसलमान धर्मका मूल ग्रन्थ कुरान है। ईश्वरने जिबराइलको मुहम्मद साहब

के पास भेजकर समय समय पर अपना सन्देशा भेजा था। उन्हीं संदेशोंके अनुसार मुहम्मद साहब ने इसलाम धर्मका उपदेश देकर प्रचार किया है। अन्त में हजरत मुहम्मद साहब द्वारा कहे गये उन्हीं ईश्वर वाक्योंको संग्रहकर पुस्तकाकार ग्रन्थ तय्यार किया गया। इसी ग्रन्थको कुरान शरीफ कहते हैं। कुरान शरीफका मुख्य सिद्धान्त यह है,—"ईश्वर एक है। वह कर्म फल देता है। पुनर्जन्म नहीं होता। मृत मुसलमान कब्रों में क्यामत अर्थात प्रलय तक सोते रहेंगे। क्यामतके दिन सब शव कब्रोंसे जीवित हो उठेंगे। उस समय अल्ला मियाँ उनसे आकर कहेंगे कि मैं अल्ला हूँ। यह सुनकर जीवित शव कहेंगे कि हम कैसे जानें। तब अल्ला मियाँ उन्हें अपनी पिण्डली दिखायेंगे। तब उन पर विश्वास होगा। उपरान्त सबके पुण्य पापका विचार होगा। और सबको कर्मानुसार स्वर्ग नर्क दिया जायगा।"

मरनेके पूर्व मुहम्मद साहबने अपने अनुयायियोंकी एक सभा

स्थापित की थी । उस सभाको उन्होंने अधिकार दिया था कि भविष्य में वह राज्य और धर्म प्रबन्ध के लिये योग्य पुरुष नियत किया करे और उस पुरुषको खलीफा की पदवी दिया करे । मुहम्मद साहबके पश्चात अबूबकर, उमर और अली क्रमशः कई खलीफा हुए । उपरान्त खलीफाके पदके लिये झगड़ा उपस्थित होने पर मुसलमानोंमें सुन्नी और शिया यह दो दल हो गये । एक दल कहता था कि मुहम्मद साहबके खानदानका ही खलीफाका पद पावे और दूसरा दल कहता था कोई भी योग्य व्यक्ति खलीफा हो सकता है । इस विवादको लेकर दोनों दलोंमें भयंकर युद्ध हुआ । उसमें हसन हुसेन और उनके पक्षके लोग मारे गये । इन्हीं हसन हुसेनके स्मारक में मुसलमान लोग ताजिया रखते है । इसलाम धर्म में ईद बकरीद सुबरात, मुहर्रम, रमजान पवित्र दिन समझे जाते हैं।

मंत्रिवर शिवबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस विक्टोरिया स्ट्रीट लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

[illegible] ग्रन्थमाला रत्न ११

लोकमान्यतिलक

सन १९२१ ई०

लोकमान्य तिलक ।

भारत जननीके सच्चे पुत्र लोकमान्य श्रीयुत बाल गङ्गाधर तिलक महोदय को कुछ समझदारके सिवाय आज कौन न जानता होगा । जिन्होंने घोर कष्ट और नाना विघ्न बाधा सहने पर भी देश सेवा, देश भक्तिका आदर्श बन इस संसार को चकित कर दिया है, जो आज प्रत्येक भारतवासी के घट घटमें विराजमान हैं, जिनको सब पूज्य दृष्टिसे देखते हैं और जिनके कष्टोंको स्मरण कर सबके हृदय विदीर्ण होते हैं, वह महर्षि स्वरूप लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक धन्य हैं !

महाराष्ट्र कुल भूषण भारतके इस अमूल्य नर रत्नका जन्म बम्बई प्रान्तके रत्नगिरि नगरमें एक सुप्रसिद्ध महाराष्ट्र कुलमें २३ जुलाई सन १८५६ ई० में हुआ था । आपके पूज्य पिता महाराज गङ्गाधर रामचन्द्र तिलक एक सुप्रसिद्ध विद्वान थे। सन १८७२ ई० में तिलकको बालक छोड़ वह स्वर्गवासी हुए ।

महाराज तिलकने १९ वर्षकी अवस्था में दक्षिण कालेजसे प्रशंसाके साथ बी० ए० पास किया और २० वें वर्ष एल० एल० बी० डिग्री प्राप्त की। कुछ समय बाद वकील होकर तिलकने एक मित्रके मुकद्दमेमें अपनी योग्यताका अनुपम परिचय दिया। उससे यह प्रमाणित हुआ कि यदि आप वकालत करते तो सर्वोत्तम श्रेणीके वकील होते और यदि आप सरकारी नौकरी करते तो आज हाईकोर्टके जज अथवा अन्य कोई उच्च पदस्थ हाकिम होते किन्तु नहीं सबको तिलाञ्जलि देकर आपने देश-सेवा-व्रतको अपना एक मात्र लक्ष्य रखा।

इसी देश सेवा जीवनमें अग्रसर हो सन् १८८० ई० में आपने पूनामें स्कूल स्थापित किया। आगे आप इसकी उन्नति प्रति दिन करते गये। थोड़े ही समय बाद को सुप्रसिद्ध पत्र 'केसरी' और 'मरहटा' निकाल कर आप देशके सुधार एवं इसकी रक्षामें व्यस्त हो गये। इस प्रकार देश सेवा में आप थोड़ा ही समय व्यतीत कर पाये थे कि आपको एक विपत्तिने आ घेरा। कोल्हापुर राज्यकी ओरसे आप पर मानि-

हाकिमका एक मुकद्दमा चलाया गया। जजसाहबने उसमें आपको चार मासके लिये [illegible] की आज्ञा दे दी।

एक देशद्रोहक पर देशी राज्यका इस प्रकारका आक्रमण होने पर भी भगवान तिलक हतोत्साह नहीं हुए। सन १८८४ ई० में आपने पूनामें एक "दक्षिण-शिक्षा-समिति" नामकी सभा स्थापित की। उसके द्वारा सन १८८५ ई० में सुप्रसिद्ध फरगुसन कालिज खोला गया। उसी समय ला-क्लास का भी प्रबन्ध आपने किया। यह सब करते हुए आप वेदोंका अध्ययन करते रहते थे। उसी योग्यताके बल तिलकजीने आगे चल कर प्रसिद्ध 'आर्कटिक-होम-इन-दी-वेदाज' नामकी पुस्तकको लिखा है। राजनीतिक सुधार के लिये तो मानों आपने जन्म ही लिया था, इसके सिवा जातीय सुधारोंमें भी आपकी कम रुचि नहीं थी। राजनीतिक दृष्टिसे स्वभावसे आप जल्दी बनाये गये थे। लोकमान्य तिलक गर्म दलके नेता थे। सन १८९६ ई० में पूना वालों बड़ा भारी दुर्भिक्ष पर आप महान यशके भागी हुए। आगे सन १८९७

ई० में सूरतवाली कांग्रेस सभामें नरम और गरम इन दो दलोंमें कुछ अनबन होनेके कारण तिलक महोदय अपने दल सहित कांग्रेससे अलग हो गये। तिलक जी को गत सन् १९०८के गवर्नमेंटकी ओर राजद्रोहके लिये छः वर्ष निर्वासित हुए। छूटकर विदर्भ प्रान्तके आप सदस्य चुने गये। प्रान्तीय कान्फरेन्सका पांच वर्ष पर्यन्त आपने बड़ी योग्यता और उत्तमतासे प्रबन्ध किया।

देशवासियोंके कष्टमें दुःखित होकर उनके कष्ट निवारणकी चेष्टा तिलकने सदैव की। सन् १८९६ ई०में दक्षिण भारतमें अकाल पड़ने पर आपने अनवरत परिश्रम कर सहस्रों रुपया अन्न क्षेत्रोंका प्रबन्ध कर दिया। पूनामें प्लेगका प्रकोप होने पर आपने अस्पताल खोलकर हजारों प्राणियोंकी रक्षा की। इन्हीं देशहितकर कार्योंसे आपकी प्रशंसा हुई और यों ही क्रमशः आप भुवन विख्यात होगये। महाराज शिवाजीके जयन्तीको आपने आरम्भ कराई और उनके नाम पर शिवा-जोत्सव करा कर आपने भारतके वीरोंपर

अपने प्रेमका परिचय दिया इसी उक्त-
सम्बन्धमें कोई लेख "केशरी" में प्रका-
शित हुआ था । सन १८९७ ई० में
इस लेख पर सन्देह कर लोकमान्य तिलक
पर राजद्रोह का अभियोग लगाया गया ।
अदालतसे उस अभियोग में आपको १८
मासके राजदण्डकी आज्ञा हुई ।

पर एक देश प्रेमी निष्कलङ्क विद्वानकी
योग्यता को जाननेवाले संस्कृतके ज्ञाता
प्रोफेसर मैक्समूलर और मिस्टर विलियम
हण्टरसे तिलकका अपमान सहन नहीं
हुआ । उन्होंने दयामयी देविस्वरूपा श्रीमती
महारानी विक्टोरियासे तिलक को मुक्ति
प्रदान करनेके लिये प्रार्थना की । महारानी
ने सन १८९८ ई० में श्रीमान तिलक को
उक्त दण्ड से मुक्ति सम्मान प्रदान किया ।

आगे बढ़कर बङ्ग भङ्गका प्रश्न उठने
पर भारत वर्ष में अद्भुत जागृति हुई ।
सम्पूर्ण देश एक नवीन रङ्ग में रङ्ग गया ।
सारे देशमें स्वदेशीकी धूम मच गयी ।
इसी समय कुछ अदूरदर्शी लोगोंने बमकी
सृष्टि की । अब मामिला भयङ्कर हो गया
सरकारने उस आन्दोलन को रोकनेकेलिये

कठोर नीतिका अवलम्बन लिया। इस कठोरताका पहला हमला देशके पत्र सम्पादकों पर हुआ। ऐसे समय भारतके अनेक अनमोल रत्नोंको देश सेवासे विरक्त होना पड़ा। लोकमान्य तिलक भी इसी नीतिके शिकार हुए।

सन १९०८ ई० में "केशरी" के लेखोंको दोषी बतला कर आप पर राजद्रोही लेख लिखनेका अभियोग लगाया गया। अदालतसे १०००) रुपयेके साथ साथ ६ वर्ष निर्वासनकी आज्ञा हुई। पीछे रुपया वापिस मिला। इस बार भारत माताकी गोदसे उसके इस प्यारेलालको उठाकर सरकारने मण्डालय में जा रखा। इस घटनासे सारे भारत वर्षमें शोक छा गया। इसी ६ वर्ष काल में महर्षिवर तिलक की पत्नीका पूना में शरीरान्त हुआ। बुढ़ापेमें स्त्री वियोग और फिर मृत्युके समय मुलाकात भी नहीं हो सकी! परमात्माकी कृपासे वह समय व्यतीत कर तिलक महोदयने पुनः फिर अपनी मातृ भूमिके आकर दर्शन किया। पर निर्वासन अवस्थामें भी वह देश सेवा करते रहे। वहांसे गीता

रहस्य लिखला कर देशभक्तियोंकी सेवा में अर्पण किया।

पश्चात कुछ समय देशकी दशाका अध्ययन कर सन् १९१६ ई० में फिर आपने स्वराज्यका बीड़ा उठाया। देशभा- क्तियोंने आपके जन्म उत्सवके उपलक्षमें १ लाख रुपया अर्पण कर आपका सन्मान किया एवम् उनके प्रति अपनी भक्ति प्रगट की। देशभक्तियोंके कार्योंको देख कार्यमें ही व्यय करनेके लिये आपने प्रतिज्ञा की। दुर्भाग्यसे लोकमान्य तिलकके बेलगांव आदि स्थानोंमें होनेवाले कई व्याख्यानों पर सरकारको कुछ सन्देह हुआ। ठीक जन्म उत्सवके दिन उस सन्देहके अभियोग में २० हजारकी एक जमानत निजकी तथा दस दस हजार की दो और जमानतें कुल ४० हजार की जमानतोंके लिए मजिस्टरने तिलक महोदय को तलब किया। कई दिन पेशी हुई। अन्तमें जमानतें ले ली गयीं। श्रीमानने मजिस्टरके हुक्मके विरुद्ध अपील की। हाईकोर्टने आपको निर्दोष समझ जमानतोंका रुपया वापिस दिलाया। पाठक जानते हैं, पर वलन्टाइन चिरोल

नामक एक व्यक्तिने एक पुस्तकमें लोक-मान्य तिलकपर अकारण दोषारोप किया था उस आरोपके लिए चिरोलके विरुद्ध इंगलैंडमें आपकी ओरसे मुकद्दमा दायर हुआ। खबर थी उस मुकद्दमेंकी पैरवी करनेके लिये तिलक महोदय विलायत जाने वाले थे। इसलिए सरकारने आज्ञा देदी थी।

सन १९१५से श्रीमती एनीबेसण्टके विशेष परिश्रम द्वारा कांग्रेसके नियमोंमें सुधार हुआ पर दक्षिणोदना दलोंका पारस्परिक विरोध दूर होगया। इस प्रकार सन १९१६ की ३१ वीं कांग्रेसमें तिलक महोदय अपने सुयोग्य दल सहित लखनऊ पधारे। वहीं धूमसे आपका स्वागत हुआ। आपने अपने शुभागमनसे जातीय महासभाको पूर्ण गौरव प्रदान किया। हमारे ऐसे देशभक्त--जिनका पदानुगामी होना एक गौरव है, जिनकी अद्भुत योग्यताको शत्रु और मित्र दोनोंही समान रूपसे मानते हैं, जो ऐसे राजनीतिक सुधारक हैं कि नवीन योजना सफलता उन्हें छुआ नहीं सकी, जो साधारण वस्त्र और मधुर भाषा द्वारा विभूषित रहे, जिनकी महा-

राष्ट्र एक अवतार मानते हैं, जो केवल देशके ही नहीं परन्तु संसारके एक बड़े विद्वान होते हुए भी छोटे बड़े दोनोंही प्रकारके पक्षोंमें कुछ भेद नहीं मानते थे और जिन्होंने अन्य भारतीय नेताओंसे अधिक देशवासियोंके हृदयको आकर्षित किया था;—हा वही परम पूज्य हमारे देशनायक श्रीमान तिलक महोदय सन १९२० ई० की ३१ जुलाई शनिवारकी रात के १२ बजकर ४० मिनटपर बम्बईमें इस असार संसारसे चल दिये। रविवारको इन्हें समुद्र तटपर चौपाटीमें बालूके ऊपर चिता लगाकर आपकी दाह क्रिया की गयी। इस स्थान पर इसके पहले किसी को भी चिता बनाकर दाह करनेका अधिकार नहीं मिला था। चिताभूमि पर भीड़का अन्त नहीं था। मृत्युके पहले देशवासियों के प्रति लोकमान्यजीने यह सन्देश दिया था। यही उनकी अन्तिम आज्ञा है,—

आज हमारे सामने जो राष्ट्रीय काम है, वह इतना महान, विस्तृत और आवश्यक है कि, जितने उत्साह और साहसके साथ मैं करता हूं उससे अधिक उत्साह

और साहसके साथ आप लोगोंको एक
साथ मिलकर करना होगा। यह काम
ऐसा नहीं है, जो ताक पर रख दिया जा
सके। हमारी मातृभूमि हम लोगोंमेंसे हर
एक को पुकार२ कर कह रही है कि
तुरन्त खड़े हो जाओ और काम करो।
मैं नहीं समझता कि, उसके पुत्र उसके
वचनोंका निरादर करेंगे? फिर भी देश-
वासियोंके प्रति यह प्रार्थना करना मैं
अपना कर्तव्य समझता कि आप लोग
अपने समस्त झगड़ों को मिटा कर माताकी
इस पुकारका उचित उत्तर दें और राष्ट्रीय
आदर्शोंको मूर्तिमान बनानेका उद्योग करें।
इसमें प्रतिस्पर्द्धा, ईर्षा या भयको स्थान
नहीं देना चाहिये। ईश्वर हम लोगों के
प्रयत्नोंको सफलता में सहायता दें गे
और इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि हम
नहीं तो हमारी भावी सन्तान हम लोगोंके
प्रयत्नोंके फलोंको अवश्य भोगेंगे।

पण्डित शिवबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैदरगंज कदीम लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

अवधवासी ग्रन्थमाला रत्न १२

कर्मवीर गान्धीजी।

सन् १९२१ ई०

कर्मवीर गान्धीजी।

प्रथम भाग

गुजरात प्रान्त में काठियावाड़ के अन्तर्गत प्राचीन सुदामापुरी आज कल पोरबन्दरके नाम से प्रख्यात है। किसी समय राना विक्रमाजीत यहां के अधिपति थे। इन कर्मवीर गान्धीके दादा उत्तम चन्दजी उनके दीवान थे। अकस्मात् राना साहब और दीवान साहब की अनबन हो गई। उन्होंने दादाजी को अपने यहां से निकाल कर इनका मकान तोपके गोलों से ध्वंस कर देने का हुक्म दिया। उत्तमचन्द पोरबन्दरसे निकल कर जूनागढ़ गये। वहां नवाबसे भेंटकी। नवाबने इनका सम्मान किया। किन्तु इनका यह सम्मान वहां के दरबारियों को सहन नहीं हुआ। उन्होंने बात चलाकर नवाबसे कहा,—"हुजूर! पोरबन्दर के दीवान उत्तमचन्दने बाएं हाथसे सलाम की है।" बाएं हाथसे शत्रु की सलाम की जाती है। अतएव इस अपराधके अभियोगमें उत्तमचन्द जीको फांसी

सक की सज़ा मिलना सम्भव थी। पर इस अभियोगसे वह भयभीत नहीं हुए, किन्तु दरबारियोंके शब्दों में ही, उसका उत्तर दिया। कहा,—"राना साहब ने मेरे साथ कैसा ही बर्ताव क्यों न किया हो किन्तु मैं अपना दाहिना हाथ पोरबन्दरकी रक्षा के लिये रखे हुए हूं।" स्वदेशाभिमान सूचक उत्तर सुनकर नवाब साहब असन्तुष्ट होने के बदले उलटे प्रसन्न होगए। उत्तम चन्द का शरीरान्त होने पर उनके सुपुत्र श्रीयुत कर्मचन्दजी गान्धी पोरबन्दरके दीवान हुए। इन्हें भी पिताके जैसे पोरबन्दर की दीवानी छोड़ कर राजकोट जाना पड़ा वहाँ इनके कार्योंसे सन्तुष्ट होकर ठाकुर साहबने एक बड़ी जागीर इन्हें देने का विचार किया। किन्तु इन्होंने उसे लेना अस्वीकार कर अपने महात्याग का परिचय दिया। आगे एक अङ्गरेज़ प्रतिनिधि द्वारा राजकोटके ठाकुर साहब को लाञ्छित होते देखकर कर्मचन्दजीने उसके वाक्योंका तीव्ररूप से खण्डन किया। इनके इस खण्डनसे वह असन्तुष्ट हो गया और इन्हें कैद कराकर एक नीमके वृक्षके नीचे खड़ा

कराया। कहा, क्षमा प्रार्थना करो। इन्होंने किसी भांति भी क्षमा प्रार्थना करना स्वीकार नहीं किया। अन्तमें कर्मचन्दकी जय हुई। तब उसने इन्हें दृढ़ कर्त्तव्यनिष्ठ देख कर अपना मित्र बना लिया। कर्मचन्दजी की धर्म पत्नी अर्थात् कर्मवीर गान्धीजीकी माता बड़ी सरल चित्त, धर्म परायणा सच्चरित्रा, सुशीला एवम् पतिव्रता वैष्णव धर्मानुरागिनी शिष्ट-महिला थीं। अपने घर तो क्या किसी पड़ोसीके घर भी वह किसी कोदुःखी नहीं देख सकती थीं। किसी जातिके रोगी को भी पीड़ित देख वह रात रात उसकी सेवा शुश्रूषामें जागरण कर बिताती थीं। उनके हृदयमें धर्म कूट कूटकर भरा था।

ऐसे पवित्र कुल एवम् धार्मिक माता पिताके आत्मज होनेका सौभाग्य हमारे चरित्र नायक को प्राप्त हुआ। आपका जन्म पोर-बन्दरमें सन१८६९ई० के अक्टूबर मासकी २ तारीख को हुआ था। पण्डितोंने ज्योतिष गणनाके अनुकूल आपका शुभनाम मोहनदास बतलाया। मोहनदास बालकपनसेही होनहार मालूम

होते थे। ५ वर्ष की अवस्था में आपके माता पिताने आपको मातृ भाषा गुजराती पढ़ने के लिये एक गांवके पाठशालामें बिठाया। उपरान्त मोहनदासके पिता जब पोरबन्दर से राजकोट चले गये तब सरकारी पाठशालामें उन्होंने इनका नाम लिखा दिया। १० वर्षकी अवस्था तक वहां गुजराती भाषा पढ़नेके पश्चात कठियावाड़के हाई स्कूलमें यह भरती कराये गये। १२ वर्षकी अवस्थामें इनका विवाह हो गया। माता पिताके परम धार्मिक होने पर भी स्कूली शिक्षा तथा सहपाठियों की कुसङ्गसे मोहनदासजी नास्तिक जैसे हो गये। पाश्चात्य देश निवासियों का अनुकरण करनेके निमित्त बल वीर्यकी वृद्धिके लिये इन्होंने चोरीसे मांस भक्षण करना आरम्भ कर दिया। नदी तट पर तथा अन्यत्र सहपाठियोंके साथ मांस खाकर उदर भरकर घर आते, यहां माता भोजन करने को बुलाती तो यह उससे कोई न कोई नहीं खानेका झूठा बहाना कर देते। इस प्रकार अपना दोष बचानेके लिये इन्हें रोज झूठ बोलना पड़ता। एक दिन इन्हें अपने

दुराचार पर बड़ी लज्जा आई । निदान इस दुष्कर्मसे छुटकारा पानेके लिये मोहन-दासने अपने मित्रोंकी सङ्गति छोड़ दी। साथही भविष्यमें मांस नहीं खानेकी दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली। आगे अपनी नास्तिकता को दूर करनेके निमित्त इन्होंने हिन्दू धर्म ग्रन्थोंका अध्ययन करना आरम्भ किया। धर्म ग्रन्थ अवलोकनसे इनके जीवन में महान परिवर्तन हो गया । आत्माका प्रकाश हुआ । हिन्दू धर्म पर अटल विश्वास एवम् अपूर्व श्रद्धा हो गयी।

आगे अहमदाबादकी प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण होकर उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके लिये भावनगर महाविद्यालय में पढ़नेका आपने विचार किया । किन्तु विलायतसे बारिस्टरी पास कर आये हुए आपके एक ब्राह्मण मित्रने कहा,--'बी० ए० पास करनेकी इच्छाको छोड़कर तुम यदि स्वदेश के लिये आदर्श बनना चाहो तथा अपने पूर्वजोंकी कीर्ति को प्रख्यात करना चाहो, तो विलायत जाकर बारि-स्टरी पास करो !, मोहन दासके हृदय में मित्रकी बात बैठ गयी । कहना नहीं

होगा, आपके पिताजीका इस समय से पहले ही स्वर्गवास हो चुका था। इस समय आपकी माता तथा २ बड़े भाई मौजूद थे। भाइयोंने इनकी विलायत यात्राकी बात को मान लिया। पर माता धर्मपरायणा थी, उन्होंने पहले इनके विलायत जानेका विरोध किया किन्तु पीछे जब जब इन्होंने विशेष इच्छा प्रकट की तब उन्होंने, एक सरावगी सन्यासीके निकट इनसे माँस मदिरा तथा महिला इन तीनों मकारोंसे बचे रहनेकी शपथ खिला कर इन्हें जाने की आज्ञा दे दी।

सन १८८८ के सितम्बर मास में मोहन-दास लन्दन पहुँचे। वहा पूरे सभ्य बनने के लिये इन्होंने नाचना, गाना, बजाना तथा फरांस भाषाको सीखा। इस में इनका बहुत समय और अर्थ नष्ट हुआ। संयोग वश एक दिन मोहनदास गांधीके मित्रोंने इन्हें एक प्रीति भोजमें सम्मिलित होनेके लिये निमंत्रण दिया। यह उसमें सम्मिलित हुए किन्तु माताके सम्मुख जो प्रतिज्ञा इन्होंने की थी, उसका स्मरण कर मांस भक्षण करनेसे इन्कार किया। इनके इस

व्यवहारसे मित्र लोग बड़े असंतुष्ट हुए। लाचार उस सभ्यताको तिलांजलि देकर यह उस भोजसे विदा हो गए। अनन्तर इनर-टेम्पल, में यह कानूनका अभ्यास करते रहे। साथही प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण होनेके लिये एक अंतरवर्गमें सम्मिलित हो गए। अपना सादा जीवन बिताने के लिये इन्होंने एक घर किराये पर ले लिया। उस में चौका चूल्हेका प्रबन्ध कर हाथसे यह भोजन बनाने लगे। इस तरह केवल४पौंड में इनका निर्वाह होने लगा। पश्चात "विजीटेरियन सोसाइटी के आप सदस्य हो गए। बस इसके सिवाय बिलायत में आप के सम्बन्धकी कोई विशेष बात नहीं है। बारिस्टरी पास कर आप सन १८९१ में भारतवर्ष लौट आये। इनके हृदय में वहांसे लौटकर अपनी माताके दर्शनोंकी बड़ी उत्कण्ठा थी, किन्तु भगवान की कुछ और ही इच्छा थी। इनकी वह अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई। ज्यों ही आपने लौटकर भारतकी पवित्र भूमि पर पैर रखा त्योंही आपकी माताके प्राण निकल गये। यह दुःखप्रद खबर सुन कर

आपका कलेजा दो टूक हो गया, सुख सूख गया, दुःखकी सीमा न रही। उपरांत ईश्वर की इच्छा समझ धैर्य धारण किया। धैर्य धरते ही फिर माताने वसुन्धरा रूपसे इन्हें गोद में बैठा लिया।

गान्धीजी राजकोट में बारिस्टरी करने लगे। उस समय पोर बन्दरकी शाखा दक्षिण अफरीका के प्रिटोरिया नगर में थी। वहां उसका एक मुकदमा दायर था मुकद्दमे की पैरवी करनेके लिये मिस्टर गान्धी को वहां भेजनेका विचार स्थिर हुआ। निदान सन १८९३ ई० में यह पहले पहल दक्षिण अफरीका पहुंचे दूसरे दिन बारिस्टरी पगड़ी पहन कर नेटालकी अदालत में प्रधान वकीलके निकट यह जाकर बैठे। इन्हें देखते ही अदालतसे हुक्म हुआ,-सिरसे पगड़ी उतार कर नीचे रखो। यह अपमान इनसे सहन नहीं हुआ। यह उठकर वहांसे चल दिये। अब यह जिस कार्यके लिये प्रिटोरिया गये थे, उसकी चिन्ता में पड़े। उस समय पीटर मेरीत्सबर्गसे चालिस्टन तक रेलगाड़ी चलती थी गान्धीजी पहले दर्जेका टिकट

उन्हें रेलगाड़ी पर बैठ गये। इतनेमें गार्ड आया। उसने क्रोधित होकर इनसे कहा,— "हटो! इस गाड़ीसे उतर कर माल गाड़ी पर तुम बैठो! इन्होंने पहले दर्जेका टिकट दिखला कर गाड़ीसे उतरनेको अस्वीकार किया। अब तो आफत आ गयी। गार्डने एक सिपाही को बुलाया। सिपाहीने इनका माल असबाब उठाकर गाड़ीके नीचे फेंका और इनको धक्के लगा कर गाड़ी से बाहर निकाल दिया। लाचार यह वहांसे चल कर माल गाड़ी पर बैठे। माल असबाब वहीं पड़ा रहा। रातभर मारे जाड़ोंके कांपते रहे। आगे ट्रांसवालकी सीमा पर मालगाड़ीसे उतर कर यह घोड़ा गाड़ी पर सवार हुए। वहां गाड़ीके जमादारने कहा,—'तुम इस जगहसे हट जाओ! हम यहाँ पर बैठकर चुरुट पियेंगे, इन्होंने अपनी जगहसे उठना नहीं चाहा। इतनेमें जमादारका मिजाज बिगड़ गया। उसने गान्धीजीके पहले जोरसे एक थप्पड़ जमाया और पीछे इनका हाथ पकड़ कर उसजगहसे हटाकर इन्हें अलग बैठा दिया। यही नहीं इन्हें डांट कर उसने कहा,-ऐ कुली!

कहींका गुलाम ! हमारे हुक्मका तू अना-दर करता है । खबरदार फिर कभी ऐसा करेगा तो जूतेकी ठोकरसे तेरे दांत तोड़ दिये जायंगे ।, इस प्रकारकी लांछना सहते हुए गान्धीजी जोहन्सबर्ग पहुंचे । वहां ग्राण्ड नेशनल होटलके दरवाजे को खट-काया । होटलवालोंने जवाब दिया,—'तुम्हारे जैसे काले आदमीके लिये होटलमें स्थान नहीं है । हटो । चलो ,

(शेष दूसरे भाग में)

पण्डित गिरिजाविहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैदरगंज कदीम लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

ब्रह्मचारी ग्रन्थमाला रत्न १३

कर्मवीर गान्धीजी ।

सन् १९२१ ई०

कर्मवीर गान्धीजी।

(द्वितीय भाग)

उपरान्त जोहंसवर्गके समस्त होटलों में गान्धीजी घूमते फिरे पर किसीने इन्हें ठहरने नहीं दिया। भारतवासियोंकी इस प्रकारकी वहां अप्रतिष्ठा देखकर गान्धी जी का हृदय विदीर्ण हो गया। यहांसे आप ट्रान्सवालकी राजधानी प्रिटोरिया पहुंचे। वहां साल भरतक ठहर कर उसी मुकद्दमे की आप पैरवी करते रहे। इस समय गीता दर्शन तथा टालस्टायकी पुस्तकें इत्यादि० पुस्तकोंको पढ़ा। एक दिन बोअर राष्ट्रपति माल क्रूगरके घरके सामने सड़कके किनारे किनारे आप जा रहे थे। सड़कके सिपाही ने इन्हें उस प्रकार जाते देख इनके एक बूट चढ़ी लात मारी और गर्दन पकड़ कर सड़ककी पटरीसे अलग कर दिया। इस अमानुषी बर्तावसे गान्धीजी असन्तुष्ट नहीं हुए किन्तु उससे आत्मसंयम और आत्मभोग रूपी सहिष्णुता को सीखा।

१८९३ में स्वदेश लौट आनेके अभिप्रायसे आप नेटाल आये। वहां 'नेटाल मरक्यूरी' नामक समाचार पत्रमें गान्धीजीने एक कानूनके मसविदेको पढ़ा। उसका आशय था, भारतवासियोंका वर्तमान हक़ छीन लिया जाय। और भविष्यमें इनपर अधिक कड़ाईकी जाय। गान्धीजीने इस कानूनका बड़े जोर शोरसे विरोध किया। एक विराट सभाकर सरकारके पास एक तार भेजा और उस कानून के प्रति घोर अप्रसन्नता प्रकट की। नेटालके समाचार पत्रोंने भी गान्धीके साथ सहानुभूति प्रदर्शित की। इस प्रतिवादको देखकर वहांके प्रधान शासन कर्ता सर जान राबिंस ने कानूनकी कुछ धाराओंमें कुछ परिवर्तन कर बाकी कानूनको ज्योंका त्यों पास कराना चाहा। गान्धीजीने आगे कदम बढ़ाया। १० हजार भारतीयोंके हस्ताक्षर का एक प्रार्थना पत्र तैयार कर भारत हितैषी लार्ड रिपनके पास विलायत भेजा। इस सबका परिणाम यह हुआ कि सम्राट महोदयने उस कानूनको ना मंजूर किया। मसविदा वापिस दिया गया। गान्धीजीके इस कार्यसे नेटालवासी बड़े सन्तुष्ट हुए।

इन्होंने इनसे अनुरोध किया कि कुछ दिन
नेटालमें रहकर भारतीयों का आप कष्ट
निवारण कीजिये । उस समय शर्तबन्दी
कुली प्रथाका वहां घोर रूपसे प्रचार था ।
गान्धीजी ने इस प्रथा को दूर करनेके
निमित्त यहां रहना उचित समझा । आप
ठहर गये । आगे 'नेटाल-इण्डियन-कांग्रेस,
तथा "नेटाल-इण्डियन-एजूकेशनल-एसो
सियेशन,, नामकी सभाओंको स्थापित कर
आप कार्य करने लगे । निज निर्वाहके लिये
वहांकी अदालत में आपने बारिस्टरी
करना चाहा । किन्तु 'नेटाल-ला-सोसाइटी
नामक वहांकी वकील समितिने आपका
प्रार्थनाका भयङ्कर रूपसे विरोध किया ।
सौभाग्य वश हाईकोर्टने वकील समितिके
विरोध को अस्वीकार कर इन्हें वहां वका-
लत करनेकी आज्ञा दे दी । यह वकील
होकर देशवासियोंकी सेवा करने लगे । कुछ
दिनकी देशसेवासे इन्हें अनुभव हुआ कि
थोड़े दिनोंमें नहीं किन्तु अधिक दिन परि-
श्रम करनेसे देशवासियोंका कष्ट दूर होगा ।
अतएव गान्धीजीने विचार किया कि देश
जाकर अपने लड़के बालों को लाकर

निश्चिन्त होकर दीर्घकाल पर्यन्त नेटालमें निवास करें। इसी निमित्त सन १८९६ में आप भारतवर्ष आये। यहाँ बम्बई मद्रास पूना आदि नगरोंमें घूम फिर कर इस देशके निवासियोंके चित्तको प्रवासी भारतवासियोंके दुःख मोचनकी ओर आकर्षित किया इसही समय "खुली चिट्ठी," शीर्षक देकर गान्धीजीने एक पुस्तक नेटालके गोरोंके नाम लिखकर प्रकाशित की। इन कार्यवाहीका समाचार संसारको खबर देनेवाली रूटर कम्पनीने विलायतको दिया। इधर "टाइम्स-आफ-इंडिया,, पत्रने भी हिन्दुस्तानियोंके प्रति नेटालके गोरोंके पाशविक अत्याचार को रोकने के लिये अनुरोध किया। यह खबर पाकर नेटालके गोरोंमें हलचल मची। किन्तु अत्याचार बन्द करनेके बदले एक कुलीने हम लोगोंका अपमान किया। यह कहकर उन्होंने इन खबरोंके प्रतिवादके साथ साथ भारतवासियों पर और अधिक अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। यह समाचार सुनकर गान्धीजी शीघ्रही यहाँसे नेटाल अपने बाल बच्चों को लेकर लौट गये। जिस समय

इनका जहाज नेटाल पहुँचा उस समय वहांके गोरे अधिवासियों में अजब जोश फैला। स्थान स्थान पर सभाएं करके उन्होंने भारतवासियोंको नेटाल में नहीं आने देनेके लिये सरकारसे अनुरोध करना आरम्भ किया। किसीने क्वारन्टाइन की अवधि बढ़ानेको कहा, किसीने कुलियोंके जहाजपर गोले बर्षाकर नष्ट करनेको कहा, कहां तक कहें हजार मुख हजार बातें। खुलासा यह कि बड़ा आन्दोलन हुआ: यहां तक कि सरकार परभी आन्दोलनका प्रभाव पड़ा। उसने गान्धीजीके जहाजको नजरबन्द कर दिया। इस कार्यवाही पर जहाज के कप्तानने सरकार को लिखा कि जब तक "भारतीयोंको नेटाल में आनेका निषेध" सम्बन्धी कानून नहीं बनजाय तब तक सरकार हमारे जहाज को नज़र बन्द नहीं कर सकती। एक पत्रमें उसको लिखा गया, यदि भारतवासी राजी खुशी अपने देशको लौट जांय तो उनके राह खर्चको दरबनके गोरे देने को तैयार हैं। गान्धीजीने इस पत्रको पढ़ कर सबको सुनाया। सबकी सम्मति हुई डरकर लौट जाना

कायरता है । हम लोग जरूर यहां उतरेंगे । निदान १३ जनवरी १८९७में गांधी जीके जहाज़ने रातके १२ बजे वहीं लङ्गर डाला। प्रातःकाल से गोरे लोगोंका जमाव होने लगा । देखते देखते ५ हजार गोरे एकत्र हो गए । गान्धी जीके मारडालनेका प्रबन्ध हुआ । सरकारी पुलिस गांधीजीकी रक्षा शायद नहीं कर सके इस अभिप्रायसे सरकारकी ओरसे मिस्टर इस्काटकेने एकत्र समुदायके प्रति कहा,-भारतवासियों को यहां आनेसे रोकनेके लिये सरकार एक कानून बनावेगी । अब तुम लोग शान्त हो जाओ, इस बचनने जादूका असर किया । बाग़ी लोग शांत हो गये । अब गान्धी जी की स्त्री और उनका पुत्र यह दोनों रूस्तमजी पारसीके घर चले गये । उनके जानेके पश्चात मिस्टर गाङ्किंक लोटन तथा कुक इन दो मित्रोंके कहने पर गाँधी जी जहाजसे उतरने लगे । इस समय एक गोरे युवकने इन्हें पहँचान लिया । वह दौड़ा दौड़ा गोरोंकी मण्डली में पहुँचा । वहां इनके उतरनेका हाल बतलाया वह झुण्डके झुण्ड दौड़कर आये । गांधी जीको

घेर लिया। मिस्टर लोटन गांधी जीको गाड़ी पर बैठा कर ले चले। मारे भीड़के गाड़ी चल न सकी। लाचार गांधीजी उससे उतर कर पैदल चलने को उद्यत हुए। वेस्टस्ट्रीट पहुँचने पर गोरोंने पत्थर, मछली सड़े अण्डे आदि गान्धीजीपर बरसाना आरम्भ किया। जूते फेंक कर मारा। इस पर भी सन्तोष नहीं हुआ तब उन्हें धक्के मार मार कर हैरान किया। आगे एक मोटा ताजा गोरा आया। उसने कहा,-अबे नेटालका नाम बदनाम करने वाला तूही कुली है! तूने कुली होकर हमारी निन्दा की।, यह कह कर गांधी जीको उसने एक ठोकर जमाई। वह गिर पड़े। उसने और अधिक मार मारा। गांधी जी मूर्छित हो गये। भगवानकी कृपासे इस समय देविस्वरूपा पुलिस सुपरिण्टेण्ट की धर्मपत्नी श्रीमती एलक जण्डरा घटना स्थल पर आ पहुची। उन्होंने सबको हटाकर बड़ी वीरता के साथ गान्धी को बचा लिया। उपरान्त गांधी जी अपने बाल बच्चोंके पास रुस्तम जीके घर पहुँचे। वह मकान के आस पास

गोरोंकी भीड़ जुड़ते देख कर श्रीमती
अलेकजेण्डराने गान्धीजीके पास सन्देश
भेजा,-यदि आप अपनी और अपने मित्र
की कुशल चाहते हैं तो वेष बदल कर
थाने चले आइये।, गान्धी जी सिपाहीकी
वर्दी पहन कर गुप्त मार्गसे थाने पर गये।
इस भाँति उनकी जान बची। सन १८९९
में अङ्गरेज बोअर संग्राम छिड़ा। कहा गया
बोअर लोग भारतीयोंके साथ अच्छा बर्ताव
नहीं करते इस लिये यह महा संग्राम छिड़ा
है।, गान्धी जीने इस अभिप्राय को
लेकर देशवासियों को समझाया कि
अङ्गरेज सरकारकी इस युद्ध में सहायता
करो साथही सरकारसे सहायता स्वीकार
करनेके लिये प्रार्थना किया। प्रार्थनाके उत्तर
में इन्हें जवाब मिला,-"यह गोरोंका युद्ध
है। इस में काले आदमियोंकी कोई जरूरत
नहीं है।, गान्धी जीने कहा,-"यदि
युद्ध में हम संग्रामका काम नहीं कर सकते
तो युद्ध में घायल सिपाहियोंकी सेवा करने
का अवसर हमको दिया जाय।, विशेष
प्रयत्न करने पर उनकी यह प्रार्थना स्वी-
कृत हुई। गान्धीजी भारतीयोंका एक

दल लेकर लड़ाई पर गये। वहाँ हर प्रकार अङ्गरेज सेनाकी सहायता की। आपका धीरज और आपके साहसको देखकर गोरे सैनिक दङ्ग हो गये। 'स्पिअनकोप, की लड़ाई में घायल हुए मोटे ताजे जनरल वुडगेटको खुद अपने कन्धे पर उठाकर दुबले पतले गान्धीजी जब धूप आंधी आदिकी परवाह नहीं कर अस्पताल दौड़े जा रहे थे, उस समयका दृश्य इतिहास पृष्ठों में स्वर्ण अक्षरोंसे अङ्कित करने योग्य हुआ था। गांधीजी की इस सब अनुपम धीरता वीरता और उनके अनुपम साहस का परिचय पाकर अङ्गरेज सरकारने इन्हें 'सरजरटमेजर, की उपाधिसे विभूषित किया।

युद्धका अन्त होने पर गांधीजी भारत वर्ष लौट आये। यहां कुछ दिन रहकर आप फिर दक्षिण अफरीका गये। अब तो इन्हें वहां बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ा। भारतीय प्रजापर शासन करनेके उद्देश्य से वहां "एशियाटिक आफिस,, खुला था। उसे देखकर १ जनवरी १९०३ को गान्धी जी प्रिटोरिया गये। यहां बड़े बड़े राजकर्म

धारियोंको दुःख सुनाना चाहा। पर आप का यह उद्योग एकदम निष्फल हुआ। साफ जवाब मिला, बड़े बड़े अमलदारोंसे तुम नहीं मिल सकते।

(शेष तीसरे भाग में)

पण्डित प्रियविहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैदरगंज कदीम लखनऊ
मुद्रित और प्रकाशित

अवधवासी ग्रन्थमाला रत्न १४

कर्मबीर गान्धीजी ।

सन् १९२१ ई०

कर्मवीर गान्धीजी।

(तृतीय भाग)

उसी समय माननीय जोसफ चेम्बर लेन दक्षिण अफ्रीका भ्रमण करने आये। गांधी जी एक भारतीय प्रतिनिधि मण्डल लेकर उनसे मिलनेको गये। वहां सूचीसे गान्धी जीका नाम निकाल डाला गया। उपरान्त गोरे पत्रोंके आक्षेपका मुहतोड़ उत्तर देनेके लिये गान्धीजीने १९०३में 'इण्डियन ओपीनियन' नामक अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती और तामिल इन कई भाषाओंका पत्र निकाला। इसके चलानेके लिये २००० पौंड आपने अपने पाससे दिया जोहन्सबर्ग में भारतीयोंकी एक छोटी बस्ती थी। इसको भारतीयोंने ९९ वर्षके लिये बोअर-सरकारसे लिखा लिया था। अंग्रेज अधिकारियोंने बीच में ही भारतीयोंसे उसे छीन लिया। गान्धीजीने इसका विरोध किया। पर कुछ फल नहीं हुआ। १९०४ में जोहन्सबर्ग में प्लेगका प्रकोप हुआ। इस समय भारतीय प्रवास नम्बर ३९ में एक अस्पताल खोलकर

प्लेग रोगियोंकी बड़ी सेवा शुश्रूषा की। "रेनल प्लेग कमेटी„ ने इस कार्यके लिये गांधीजी की बड़ी प्रशंसा की। प्लेगके अन्त होने पर आप नेटाल गये। वहां टोंगाटके फीनिक्स स्थानमें १०० बीघा ज़मीन ख़रीद कर रुस्तमजी पारसीकी सहायतासे एक विशाल भवन बनवाया। इण्टर नेशनल प्रेसको दरबनसे लाकर यहां स्थापित किया। अब "इण्डियन ओपीनियन„ पत्र यहींसे निकलने लगा। इसी स्थान पर एक पुस्तकालय और एक विद्यालय भी आपने खोला। इस सब कार्यके लिये ५१२० पौण्ड गान्धीजीने अपने पाससे दिया। उपरान्त उक्त समस्त प्रबन्धको 'फीनिक्स सेटलमेंट आश्रम नाम रखकर मिस्टर ए. एच. वेस्ट तथा छगना लाल गान्धीको दे दिया। आप भिखारी जैसे रहने लगे। सन १९०६ ई० में जुलू जातिके काफिरोंने अङ्गरेज सरकारके विरुद्ध बलवा किया। उस समय गान्धीजी भारतीयों का एक दल लेकर रणभूमि में जा पहुंचे और अङ्गरेजी घायल सिपाहियोंकी अपने दलद्वारा खूब सेवा की। इस कार्यसे खुश होकर अङ्गरेज सरकारने इन्हें सर-

जेनरल-मेजर उपाधिसे सम्मानित किया। तत पश्चात आप ट्रान्सवाल आये। यहाँ भारतवासियोंके विरुद्ध एक कानून बनवाया गया था। इसमें भारतियोंके लिये प्रत्यक्ष रूपसे 'कुली, शब्दका प्रयोग किया कानून का आशय था,—"प्रत्येक भारतीय को अपना नाम रजिस्टरमें दर्ज कराना होगा। दश अँगुल की और आठ अंगुल की अलग अलग छाप देकर अपनी मातृभूमि की कीर्ति पर कालिमा पोतना होगा।" यह कानून पास होतेही भारतीय जनता घबड़ा गयी। सर्वत्र हाहाकार मच गया। कानूनकी प्रतिलिपि बादशाहकी मन्जूरीके लिये विलायत भेजी गयी। इधर वहाँके भारतीयोंने अपना प्रतिनिधि बनाकर इन्हें विलायत भेजा। इन्होंने वहां जाकर राजपुरुषोंका चित्त इधर आकर्षित किया। भारतसचिव लार्ड मार्ले, उपनिवेशिक सचिव लार्ड एलगिन, पारलामेण्टके सदस्य सर हेनरीकाटन प्रभृतिने आपके साथ सहानुभूति की। विलायती पत्रोंने आपकी प्रार्थनाको न्यायसङ्गत बतलाया। मजूर सभाके सदस्योंने सभा द्वारा गान्धीजीकी

प्रार्थना पर ध्यान देनेके लिये सरकारसे अनुरोध किया। पश्चात गान्धीजीने लन्दन में 'साउथ अफ़्रीकन कमेटी' स्थापित कर दक्षिण अफ़्रीकाके भारतवासियोंके दुखों का परिचय देनेका प्रबन्ध किया। पर इस महान परिश्रमका कुछ फल नहीं हुआ। कानून पर बादशाहकी मञ्जूरी मिल गयी। आगे गान्धीजीने देखा बिना निज पावोंके बल खड़े हुए अब काम नहीं चलनेका है। केवल भीख जैसे स्वत्वोंको मांगनेसे कुछ नहीं होगा। यही सब सोच विचार कर सन १९०७के जूलाई मास में आपने सत्याग्रह की घोषणा कर दी। इस घोषणाका अभिप्राय था,-'अन्यायसे यदि जेल दिया जाय तो जेलको महल समझना होगा अपने स्वत्वके लिये सब तरहका कष्ट सहन किया जाय। किन्तु स्वत्व नाशक कानूनको कदापि न माना जाय। इस घोषणा को पाकर सैकड़ों मनुष्य सत्याग्रही बन गये। हिन्दू मुसलमान, कृस्तान, पारसी चीनी प्रभृति सभी आपके अनुगत हुए। जेल भरा जाने लगा। सब लोग आनन्दसे अपने स्वत्वोंकी रक्षाके लिये उसमें जाने लगे।

अब तो ट्रान्सवाल सरकारकी आंखें खुलीं। जनरल स्मटसने गान्धीजीको बुला कर कहा,-आप आन्दोलन करना छोड़ दें, कानून में उचित सन्शोधन कर दिया जायगा।, गान्धीजीने उनकी बात पर विश्वास कर कुछ दिनके लिये आनन्दोलन कम किया। पर पीछे सरकारको वह प्रतिज्ञा पूरी होते न देख कर जोहन्सबर्ग में एक विराट सभा की उसमें भारतियोंने अपनी सनदोंको आग में डालकर फूक दिया। साथही मनमें ठान लिया कि, अपमान नहीं सहन करेंगे। जेलकी समस्त यातनाओंको भोग लेंगे। अब गान्धीजी पकड़े गये। सत्याग्रह„ प्रचार करनेका आप पर अभियोग लगाया गया। अदालतमें आपने कहा,--"मेरे ऊपर जो अभियोग लगाया गया है, उसे मैं प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार करता हूँ। मैंने जान बूझकर इस अमानुषी कानूनका प्रतिवाद किया है। हम न्याय चाहते हैं। हमारे साथ अन्याय किया जाता है। इसजुल्मी कानूनके तोड़ने के लिये हम भारी से भारी अपराधी बनने को तैयार हैं।„ मजिस्टरने फैसले में कहा,-

आपके साथ मेरी पूर्ण सहानुभूति है। पर सरकारी कानूनको अमल में लाना मेरा कर्तव्य है। क़ायदेके अनुसार २ मासकी सज़ा आपको दी जाती है।" गान्धीजी जेल भेजे गये। वहां आपको बड़ा कष्ट दिया गया। असभ्य काफ़रोंके साथ उन्हीं के हुक्मपर गान्धीजी को जेलमें रखा गया। कष्टकी सीमाका अन्त न रहा। अधिक क्यों गान्धीजीसे टट्टी तक साफ करनेका काम लिया गया। पर गान्धीजी विचलित नहीं हुये। अवधि व्यतीत होने पर जब जेलसे छूटे तब जेलके दरवाजे पर आपका स्वागत करनेके लिये अखिल भारतीय उपस्थित हुए। फूलोंकी वर्षा होने लगी। आप फिर उसी आन्दोलनमें लग गये। सन्‌के १९०८ के अक्टूबर मासकी ९ तारीख को आप दरबनसे ट्रान्सवाल जाते समय वाकरस्ट स्थानमें पकड़े गये। फलतः २५ पाउण्ड जुर्माना तथा २ मासकी सजाका आपको हुक्म हुआ। वहां आपको सूखा खाना दिया गया। ९ घण्टे नित्य काम देना पड़ा। कड़ी धूप में कड़ी ज़मीन को कुदारी लेकर खोदना पड़ा। हाथोंमें छाले

पड़ गये, हाथ कट गये। हाथोंसे छल २ खून तथा पानी बह निकला। कमर झुकाना कठिन हो गया। सब कुछ हुआ पर गान्धीजीने अपनी प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ा। तीसरी बार आपको १९०९ में ३ मासकी कड़ी सजाका हुक्म हुआ सन १९११ में ट्रान्सवालके राजस्व सचिव जनरल स्मट्सने गान्धीजीको बुलाकर कहा,-इस समय आप कानूनको स्वीकार करलें। पीछे पार्लामेंट में नियमानुसार इसका उचित संशोधन कर दिया जायगा। सचिव की बातका विश्वास कर गान्धीजीने सुलह कर ली। किन्तु ट्रान्सवाल सरकारने अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं किया। सन १९१२ में माननीय गोपाल कृष्ण गोखले वहां पधारे। गान्धीजीने आपका बड़ा सम्मान किया। गोखलेने वहांसे लौट भारतमें आकर कहा,-जितना प्रभाव मेरे ऊपर श्री युत गोविन्द रानाडे और परम पूज्य दादा भाई नौरोजीके उपदेशका पड़ा था उससे अधिक प्रभाव मेरे ऊपर गान्धी जीके आचरणने डाला।, १९१३में संयुक्त पारलामेंट द्वारा भारतीयोंके लिये कुली कानून प्रथाका

कानून बना। गान्धी जीने इस कानूनका विरोध किया। आपने सरकारको लिख भेजा-यदि कुली कानूनका सुधार तथा ३ पौंड करको रद्द नहीं किया जायगा तो हम फिर सत्याग्रहका प्रयोग करेंगे।, यह सूचना पाकर भी सरकारने कुछ ध्यान नहीं दिया। गान्धी जीने फिर सत्याग्रह की घोषणा कर दी। इस कानूनके सम्बन्ध में श्रीमती गान्धी जीने अपने पति गान्धी जीसे प्रश्न किया,—क्या इस कानूनके अनुसार हम आपकी पत्नी नहीं मानी जांयगी? गान्धी जीने उत्तर दिया,"हां! इस कानूनानुसार न तुम हमारी धर्मपत्नी हो और न हमारे बालक कानूनसे बालक समझे जांयगे।,आगे श्रीमतीने कहा,-तब तो इस अमानुषी कानूनसे बचनेके लिये स्वदेश भाग जाना चाहिये।, गान्धीजीने उन्हें ढाढ़स देकर कहा,--देश भाइयों पर इसबज् जैसे,कानूनका प्रहार होते देखकर अपनी रक्षाके लिये भाग जाना हमारी घोर कायरता है। हरगिज नहीं जाना चाहिये। कुटुम्बी और प्राणोंका मोह छोड़ कर इस प्रहारके रोकने का उपाय करना

चाहिये। यह उत्तर पाकर श्रीमतीने पतिसे निवेदन किया—प्राणनाथ! आज क्या मुझ को इस कानूनका विरोध करने के निमित्त जेल में जानेको आप आज्ञा देंगे? गान्धी जीने जेल की यातनाओंका वर्णन करके श्रीमतीको जेल जानेसे रोका। कहा,—तुम बीमार हो! जेलके कष्ट तुम नहीं सहन कर सकोगी।,, पर आगे श्रीमतीके विशेष आग्रह करने पर गान्धीजीने उन्हें जेल जानेकी आज्ञा देदी। पतिकी आज्ञा प्राप्त कर श्रीमती गान्धी निजपुत्र रामदास तथा अन्य १५ स्त्री एवम पुरुषोंके साथ साथ ट्रान्सवालकी सीमापर पहुँची। वहां कुली कानूनके अमलदार ने श्रीमती तथा अन्य सत्याग्रहियों को पकड़ कर ३-३ मासकी सजाका दण्ड दिया। इधर श्रीमती जेल गईं उधर गान्धीजीने ट्रान्सवाल वृटिश एण्डियन ऐसोसियेशनमें प्रभावशाली व्याख्यान दिया। सैकड़ों आदमी सत्याग्रही हो गए। उनके एक दलने न्युकैसल में जाकर शर्तबन्ध कुलियोंको समझाया। उन लोगोंने, हड़ताल करना आरम्भ किया। अस्पताल, होटल, खाना, पाखाना

सबका काम बन्द हो गया। उपरान्त इन चार हज़ार हड़ताली भारतीयों को लेकर गान्धी जी ट्रान्सवाल की सीमा पर पहुंचे उस समय का दृश्य।

(शेष भाग ४ में)

पण्डित शिवबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैदरगंज कदीम लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

अवधवासी ग्रन्थमाला रत्न १५

कर्मवीर गान्धीजी।

सन् १९२१ ई०

कर्मवीर गान्धीजी ।

चतुर्थ भाग ।

चार हजार भारतीयों को लेकर जिस समय ट्रान्सवाल की सीमा पर गान्धी जी पहुंचे, उस समय का दृश्य देखने योग्य था। हजारों स्त्रियां, हजारों पुरुष, हजारों बच्चे "बन्दे मातरम! बन्देमातरम!" कहते हुए ट्रान्सवालके भीतर घुस पड़े। इस दलके अगाड़ी २ चाले समय पामफोर्ड स्थानके निकट गान्धीजी पकड़ लिये गये। अनाधिकारी मनुष्यों को ट्रान्सवाल के भीतर प्रवेश, कराने का अभियोग आपपर लगाया गया। पीछे मजिस्टरने ५० पौण्ड की जमानत पर इन्हें छोड़ दिया। छूटतेही गान्धी जी फिर उसी दल में जा मिले। उपरान्त स्टाण्डर टाउनके निकट यह फिर पकड़कर मजिस्टरके सामने खड़े किये गये पर मुकद्दमेकी तारीख बढ़ गई। गान्धीजीने फिर आगे जाकर उसी दलका साथ दिया। डण्डीके मजिस्टरके हुक्मसे अब गान्धीजी ग्रोलन्नटर में तीसरी बार पकड़े गये। इस बार पुलिसने साथियोंको नेटाल पहुंचाया

और गान्धीजी को मजिस्टरके सामने खड़ा किया। मजिस्टर के सामने गान्धी जी ने कहा,—" जब तक कानूनका संशोधनकर ३ पौण्डका कर रद्द न कर दिया जायगा तब तक हड़ताल कायम रहेगी। लोग भीख मांग मांग कर खायंगे। बिना इस प्रकार कष्ट उठाये अब इस अन्याय का अन्त न होगा।,,

मजिस्टरने ६० पौण्ड जुर्माना अथवा ९ मासके कठिन कारागार दण्डका हुक्म दिया। उपरान्त वाकरस्ट वाला मुकद्दमा हुआ। उसमें भी ३मासकी कैद का हुक्म हुआ। इस भांति कुल एक वर्ष की सजा आपको हुई। इस सजामें लोग और भी चिढ़ गये। अब दरबन, जूलूलैण्ड, अमनी-स्टोन आदि स्थानोंमें भी हड़ताल हो गई। धीरे २ हड़तालियों की संख्या २५ हजार से भी अधिक बढ़ गयी। ईंटे पत्थर चले, तीर छूटे, गोलियां बरसीं। अनेक लोग घायल हुए। लाचार सरकार को भारतीयोंके कष्टों की जांच करनेका कमीशन निकालना पड़ा गान्धीजी जेलसे छूटकर आये। भारतीयों ने आपका धूम धामसे स्वागत किया।२१

दिसम्बर १९१३ को दरबन में चार हजार भारतीयों की एक महासभा हुई। उसमें कमीशनके बहिष्कार करनेकी सलाह हुई। १ जनवरी १९१४ को फिर भारतीयोंके साथ ट्रान्सवाल घुसनेका विचार निश्चय हुआ। उसी समय गोरोंने भी हड़ताल कर दी। देशमें फौजी कानून जारी हो गया। भारतीयोंके जानमाल की हानि होनेकी आशङ्का हुई। अतएव गान्धीजी ने कमीशन की रिपोर्ट प्रकट होने तथा पारलामेण्ट में निर्णय होने तक सत्याग्रह व्रत को स्थगित रखनेके लिये सरकार को सूचना दे दी।

कमीशनने बड़ी जांच पड़तालके पश्चात अपना विचार प्रकट किया। कहा,—

"गान्धीजीका मांगना न्याय सङ्गत है ३ पौण्डका कर बन्द करना चाहिये। दक्षिण अफ्रीका में जन्मे हुए भारतीय को बिना परवाना केपमें जाने देना चाहिये। हिन्दू और मुसलमानोंकी रीत्यानुसार विवाहको जायज समझना चाहिये। कुली वालान आईनका संशोधन करना चाहिये, एक कानून बनाकर भारतीयोंके अभावको दूरकर उनके भयानक युद्धसे विश्राम लेना

चाहिये।„ वैसाही हुआ। १९१४ के जून मासकी २ तारीख को सन्युक्त पारलामेंटमें जनरल स्नटसने इण्डियन-रिलीफ-बिल नामक एक मस्विदा पेश किया। आगे चलकर वह मस्विदा बहुत वादानुवादके उपरान्त पारलामेंट में पास होकर आईन में परिणत हुआ। अब गान्धीजीका परिश्रम सफल हुआ। सत्याग्रह युद्धका अन्त हुआ। गान्धीजीका पूर्ण रीतिसे सन्सार में सम्मान हुआ। आगे आप विलायत होकर भारतवर्ष पधारे। सब जगह श्रीमान गांधीजीका स्वागत सम्मान देवताओंके जैसा हुआ और हो रहा है। वास्तव में देशवासियोंके दुःख-मोचन-उपायको घोर परिश्रम द्वारा कार्य में परिणत कर दिखाने का प्रत्यक्ष निदर्शन हमारे इस भारतवर्ष में आज कर्मवीर श्रीमान गान्धीजी हैं। आप धन्य हैं। इस युग में आपका अनुकरण करना हम भारतवासियोंका कर्तव्य है।

अन्त में हम गान्धी जी के मुख्य मुख्य विचारोंकी ओर आजकलके नवयुवकोंके चित्तको आकर्षित करते हैं। गान्धीजीको अनेक लोग कहते थे कि वह बौद्धमत को

मानते हैं, दूसरे कहते थे कि वह ईसाई मतको मानते हैं, तीसरे कहते थे कि वह मुसलमान मज़हबको मानते हैं और अन्य अनेक लोग कहते थे कि, गान्धीजी आर्य समाजी हैं वह मूर्तिपूजा नहीं करते। उनकी पुस्तकों में गणपतिकी मूर्तिका चित्र बतलाना मिथ्या है। पर लोगोंका यह सब भ्रम गुरुकुल कांगड़ीके एक आर्य समाज उत्सव में उपस्थित होकर श्रीयुत गान्धीने दूर कर दिया। उन्होंने स्वयम अपने मुखार बिन्द से कहा,-"मैं सनातन धर्मावलम्बी हिन्दू हूँ। मैं हिन्दू के सिवा अन्य शब्द नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ कि मैं हिन्दू ही रह कर मरूं। यदि कोई मेरे को कहे कि, तुम हिन्दू नहीं हो तो मैं उसके साथ सत्याग्रह का प्रयोग करूंगा।" सिन्धकी आर्य समाज में उन्होंने कहा,— "आर्य, ब्राह्म, सिख, आदि धर्म हमारे हिन्दू धर्म में पुनश्च लीन हो सकते हैं। हिन्दू धर्म ऐसा श्रेष्ठ है, कि हम अपनी बुराइयोंका बहिष्कार कर फिर भी उसीं में समा सकते हैं।"

निर्भयताके विषयमें गान्धीजीने कहा,

"जो कुछ हमारे मन में है। उसको प्रका-शित करने में हमको भय नहीं करना चाहिये। इस विषय में लार्ड विलिङ्गटनने बम्बई में कहा था, इस देशके लोग "ना" को "ना" नहीं कह सकते। मनुष्य को राजी करनेका उत्तर ढूढ़ते हैं। ईश्वरको राजी नहीं रखते। यह सबकी भूल है। हम को चाहिये ईश्वरको सर्वज्ञ और सर्वद्रष्ट मानकर उनके सिवा और किसीसे भयभीत नहीं हों। लोग जो यह कहते हैं कि सर-कार बहुत बड़ी है, सरकार तोप बन्दूक वाली है, जिसको चाहे देशनिकाले की सजा दे दे। यह उनका कहना बोदा है। सत्य तो यह है कि इस सरकार की भी सरकार दूसरी बड़ी सरकार है। मनुष्यमात्र को पहले उस बड़ी सरकारकी प्रजा बनना चाहिये। उस सरकार की प्रजा होनेके पश्चात इस छोटी सरकारकी प्रजा बनना वाजिबहै। बड़ी सरकार आठो पहर जागती रहती है। सच्चे दिलसे उनके सेवक बनना चाहिये। वेद, शास्त्र, बाइबिल, कुरान, जिन्दाबस्ती आदि सबमें यही लिखा है। उनके आदेशों पर हम ध्यान नहीं देते।

कर्तव्य च्युत होतेहैं । अतएव इनको भयका त्याग करना उचित है ।,,

गान्धीजी प्राचीन सभ्यताको गौरवकी दृष्टिसे देखते हैं । गान्धीजी को पूर्ण विश्वास है कि, प्राचीन सभ्यतासे ही मातृ भूमिका उद्धार हो सकता है । आधुनिक सभ्यताके विषय में आपका कहना है,-- "अङ्गरेजों में कोई खास दोष नहीं, है, किन्तु उनका तथा यूरोपके आज कलके सुधारोंका दोष है । उनके सुधार खुद उनके लिये ही सुधार नहीं होकर उलटे कुधार हो रहे हैं । इस दोषको पाश्चात्य देशवाले भी मानते हैं । यही सब सोच विचार कर गान्धी जीका मत है, भारत वर्षको "स्व-राज्य,, उपनिवेशोंके जैसा नहीं चाहिये, किन्तु भारतवर्षके जैसा प्राप्त करना चाहिये । यदि उपनिवेशों के जैसाही भारत को स्वराज्य मिला तब तो हम कहेंगे, ऐसा स्वराज्य चाहने वाले अङ्गरेजोंको नहीं चाहते किन्तु अङ्गरेजी शासनको चाहते हैं । वह बाघ को नहीं चाहते किन्तु बाघ के स्वभावको चाहते हैं । दूसरे शब्दों में इसका अर्थ हुआ, भारतवासी अपने भारत

वर्षको अङ्गरेजी सांचे में ढालना चाहते हैं। यदि ऐसा हुआ तो फिर भारतवर्ष वही असली भारतवर्ष कहां रहा? तब तो भारतको भारत नहीं कह कर इङ्गलिस्तान कहना होगा। ऐसा स्वराज्य हमारे ध्यान में नहीं आता। हम भारतको भारत रख कर स्वराज्य चाहते हैं।,,

इसी उद्देश्यकी पूर्तिके निमित्त कर्मवीर गान्धी जीने प्रथम रौलट ऐक्ट जैसे कानूनों के विरुद्ध सत्याग्रहका संख बजाया। उस संग्रामके परिचालनार्थ बम्बई में एक समिति बनाई गई। कर्मवीर गान्धी जी उसके सभापति हुए और बी० जी हारनी मैन उपसभापति तथा सेठ यमुनादास द्वारकादास, श्रीमती सरोजनी नायडू एस० सुवेदार, हंसराज थैकसी आदि सदस्य हुए। संग्राम आरम्भ हुआ। सम्पूर्ण भारत में धूम मच गई।

इस समय कांग्रेसके सञ्चालकोंके मध्य एक अपूर्व गुल खिला। जो लोग कांग्रेस को दिलबहलावकी एक मैफिल जैसा समझ केवल मौखिक वक्तताओं द्वारा

प्रायः ३५ वर्षसे देशको भुलावा जेसे देते हुए अपनेको नेता प्रसिद्ध कर रहे थे, उनकी इस समय पोल खुलने लगी। अब इधर उधर छिपनेका उद्योग करने लगे। इसी समय डायर और ओडायरशाही की अदूरदर्शिताके कारण पंजाब में जलियानवाला बागका भयङ्कर नादिरशाही काण्ड उद्घटित हुआ। लाचार कर्मवीर गान्धीजी को कुछ समयके लिये सत्याग्रह-संग्राम स्थगित करना पड़ा।

आगे पंजाब का भयंकर काण्ड, खिलाफत और स्वराज्य इन तीनोंके उद्धारका एक मात्र उपाय अहिंसात्मक आन्दोलन अस्त्र समझकर कर्मवीर गान्धीजीने उसके परिचालन का उद्योग आरम्भ किया। श्रीमान महम्मदअली शौकतअली साहबान आपके सहमत हुए। आगे इस विचारको कार्यमें परिणत करनेके निमित्त कलकत्ते में काँग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ उसके सभापति निर्वाचित हुए। पंजाब केशरी लाला लाजपतराय जी। सन १९२० ई० में ४ से ८ सितम्बर तक उक्त कानफरन्सकी बैठक हुई। उसमें

अहिंसात्मक असहयोग प्रयोगका प्रस्ताव पास हो गया। प्रयोग की विधि तय्यार करने के लिये एक समिति संगठित हुई। उस समिति में विधि निर्माता कर्णधार गांधी पं० मोतीलाल नहरू और मि० पटेल यह ३ महानुभाव नियत हुए। आगे चल कर सन १९२० दिसम्बर को होनेवाली नागपुरकी कांग्रेस सभामें अहिंसात्मक असहयोग प्रयोग करनेका प्रस्ताव पुष्ट रूपेण अधिक सम्मतिसे पास हुआ।

तबसे बराबर उसीका प्रयोग हो रहा है। हिन्दू मुसलमान तथा समस्त भारतवासी तन मन धनसे इस उद्योग द्वारा स्वराज्य प्राप्तिकी चिन्ता कर रहे हैं। इसी समय महात्मा जीने भारत सरकारको चेतावनी दी। चितावनीका फल कुछ नहीं हुआ वरन हिंसा प्रस्तावों पर १२ मार्च सन १९२२ में आपको ६ वर्षका कारावास दण्ड हुआ।

पण्डित शिवबिहारी लाल बाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैदरगंज कदीम लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

जैनपथवासी ग्रन्थमाला रत्न १६

गोपालकृष्ण गोखले

सन् १९१६ ई०

गोपालकृष्ण गोखले।

कोल्हापुर जिला भी बड़ा भाग्य शाली है जहाँ पर माननीय महात्मा गोपाल कृष्ण गोखले सी. आई. ई. का जन्म सन् १८६६ ई. में हुआ था। माननीय गोखले जीके माता पिता यद्यपि धनवान नहीं थे तथापि उच्चकुलोत्पन्न थे। पिताने निर्धन होने पर भी आपकी शिक्षाका अत्युत्तम प्रबन्ध रखा था। एक तो आप स्वयमही तेज थे और दूसरे आपकी शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध था। अतएव आपने शीघ्र ही अर्थात १८ वर्ष की अवस्था में बी० ए० पास कर लिया। आपने एफ. ए. कोल्हापुर राजाराम कालेजसे और बी. ए. डक्कन कालेज पूनासे पास किया था। आपके माता पिताकी यह इच्छा थी कि आप पढ़ लिख कर द्रव्योपार्जन करें और गृहकी दरिद्रता को दूर करें और आपके भाई तथा अभिभावकों की यह इच्छा थी कि आप इन्जीनियर बनें। परन्तु आप देशसेवी होनेवाले थे। इस लिये वह और कुछ न

छोकर देशसेवा में लग गये। सन १८८४ में लोकमान्य तिलकने दक्षिण शिक्षासमिति, स्थापित की और हमारे चरित्र-नायक उसके जीवन सदस्य बन गये। आप सभा के उद्देश्य अनुसार फार्ग्यूसन कालेजमें ५०) मासिक वेतन पर अर्थ शास्त्रके अध्यापक हो गये। आपने देश-सेवाका यहींसे 'श्री गणेश' किया। वैसे तो आप सब विषय अच्छे पढ़ाते थे, परन्तु आपकी विशेष रुचि अर्थ शास्त्र, इतिहास व गणित की ओर थी। आप इन विषयोंको इतनी उत्तमतासे पढ़ाते थे कि वैसे भारतवर्ष में क्या भूमण्डलमें भी सब जगह नहीं पढ़ाये जाते हैं। आपकी योग्यताके परिचायक और विशेष उल्लेख योग्य शिष्य फर्ग्यूसन कालेजके आनरेरी प्रिंसिपल मिस्टर परांजपे सीनियर रैङ्गलर हैं, जिनकी योग्यता पर भारतवर्ष को गर्व है।

कालेजको आपने अपनी शिक्षा शक्ति का ही स्वाद केवल नहीं चखाया परन्तु आपने उसकी इमारतके लिये-अपने छुट्टी के समय--अपमान युक्त बातें सहकर लाखों रुपये संग्रह किये। सन् १९०२ ई० में

आपने कालिजसे सम्बन्ध छोड़ा । आराम करनेके लिये नहीं परन्तु देशोपकार के लिये । तत पश्चात आपको ३०) पेन्शनके मिलते रहे।

इसी समय आपका स्वनाम धन्य रानाडेसे मिलन हुआ । रानाडेके समान देशभक्त पुरुषके सम्मिलनसे आपको बहुत लाभ हुआ। रानाडेके शिष्य बनकर गोखलेको सम्मान हुआ और गोखलेके समान योग्य और कर्तव्य परायण शिष्यको देख कर रानाडेकी भी आत्मा फूली न समाती थी ।

सन १८८७ ई० में आप 'कार्टली जनरल' पत्रके सम्पादक हुए। १८८८ ई० में पहिले पहल आपने बम्बईकी प्रान्तीय कान्फ्रेन्स में योग दिया । वहांकी आपकी स्पीच सुनकर श्रीमधोलकर जीने भविष्य द्वाणी की थी कि गोखले एक न एक दिन अवश्य नेशनल कांग्रेसके सभापति होंगे। सन १८९५ की पूना कांग्रेसमें आप मन्त्री हुए थे। बम्बई प्रान्तीय सभाके मन्त्री भी आप ४५ वर्ष रहे थे। इन्हीं दिनों आपने

सुधाकर साप्ताहिक पत्र संपादित किया था।

सन १८८७ ई० में भारतीय व्यय संबन्धी वेल्बी कमीशनके सम्मुख इजहार देनेके लिये कई सज्जनों सहित आप विलायत गये। वहांसे आनेपर बम्बई व्यवस्थापक सभाके आप मेम्बर चुने गये। सन १९०१ में आपने वाइसरायकी कौंसिल में विश्वविद्यालय प्रस्ताव पास होते समय वक्तृता दी थी। तब लार्ड कर्जनको स्वयं उसके उत्तर देनेके लिये खड़ा होना पड़ा था। इसी समय आपको सरकारने सी० आई० ई० उपाधिसे विभूषित किया था।

सन १९०५ ई० में बनारसकी कांग्रेसके आप सभापति हुए। यों तो आप प्रथम हीसे इस जातीय सभामें योग देते चले आ रहे थे परन्तु इस बार आपने बहुत उपदेशप्रद स्पीच दी जिसको पढ़नेवाले ही जानते हैं कि वह स्पीच कितनी जोशीली थी। इसी समय आपने देखा कि देशको सच्चे सेवकोंकी बड़ी आवश्यकता है। अतएव तुरन्त भारत-सेवा-समिति, संगठित कर खड़ीकर दी। वह अद्यावधि उत्तमतासे कार्य

चला रही है। आगे आप विलायत गये और वहां पर लार्ड कर्जनकी दमन नीतिका विरोध किया।

विलायत में बहुतसी उत्तमोत्तम वक्तृतायें देकर आपने यह सिद्ध कर दिया कि अब भी भारत भूमि उत्तम २ लाल उत्पन्न करती है। सन १९१२ में आप अफरीका गये। वहां प्रवासी भारतवासियोंसे आपने भेट की और उनका कष्ट निवारण किया। उनके इस उद्योगसे प्रतिज्ञाबद्ध कुलियोंका नेटालका जाना बन्द हो गया। आप अशुल्क और अनिवार्य शिक्षाके बड़े पक्षपाती थे। इसी आशयका आपने एक बिल कौंसिलमें उपस्थित किया था किन्तु वह पास नहीं हुआ। सन १९१३ ई० में आप पब्लिक सरविस कमीशनके सदस्य नियत किये गये थे।

सन १९१४में आपको भूतपूर्व वाईसराय लार्ड हार्डिञ्ज महोदयने के० सी० आई० ई० की उपाधिसे बिभूषित करना चाहता था। परन्तु देशसेवा में व्याघात पहुँचनेके भय से आपने लाट साहब की कृपाके लिये कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसे अस्वीकार

किया था। इससे आपके निःस्वार्थ देशसेवी होनेका पता चलता है।

माननीय गोखलेने अपना सब जीवन देश-सेवा में बिता दिया। वह उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ थे। उनका सरकारसे व्यक्ति गत कोई झगड़ा न था। परन्तु देश सेवासे प्रेरित होकर सरकारी कार्योंका उन्होंने विरोध किया था। आपका आदर राजा और प्रजा दोनों करते थे।

सन १९०५ ई० में १९ फरवरी को इस देशसेवी महानुभावका शरीरान्त हुआ। आपके देहान्तसे भारतवर्षको बहुत हानि पहुँची। आपकी मृत्यु पर प्रायः समस्त शिक्षित समुदायने शोक मनाया। स्कूल कालिज और कचहरियां बन्द हो गई। भारत वर्षका कोना कोना दुःखी हो गया। राजराजेश्वर जार्जने शोक सूचक तार भेजा। वाइसरायने कौंसिल बन्द करते हुए कहा,--"गोखलेकी मृत्युसे जो स्थान खाली हो गया है उसकी पूर्ति नहीं हो सकती है। सेक्रेटरी ओव स्टेटने शोक सूचक तार आपके कटम्बको स्वयम् भेजा

था । देशके सब विद्यार्थियोंने शोक मनाया । सबकी जबान पर यह था ।

"जिस पै सबको दिमाग था न रहा ।
मुल्क में एक चिराग था न रहा,, "

माननीय गोखलेका जीवन चरित्र हम लोगोंको शिक्षा देता है, निज स्वार्थ को बिना त्याग किये कोई देशका सच्चा सेवक नहीं हो सकता । साथही इस बात की आवश्यकता भी नहीं है, कि देश सेवक कोई वकील, बारिस्टर तथा उच्च सदस्य हाकिम ही हो ।

उनके बिचार और कार्योंसे यह स्पष्ट होता है कि देशकी दशा सुधारके लिये किसी समय अथवा किसी शक्तिके ऊपर निर्भर रहनेकी आवश्यकता नहीं है । यदि भारतवासी स्वयम् अपने प्रबन्धोंको अपने शिरपर लेते जांय तो एक दिन आपसे आप वह समय आ जायगा, जब हम अपना शासन अपने आप कर सकेंगे । उनकी स्थापित की हुई स्वयम्-सेवा-समिति प्रत्यक्ष दर्शा रही है, कि भारत-

स्वामी देशका प्रबन्ध जितनी उत्तमतासे कर सकते हैं, उतनी उत्तमतासे कोई सरकारी सिपाही, अथवा सिपाही समुदाय नहीं कर सकता।

यही क्यों—देश-सेवक अपने हृदयसे अपने देशकी सेवा करते हैं और सरकारी सिपाही अपने वेतन भर में सरकारी आज्ञाका पालन करते हैं। देशसेवकोंकी सेवाका मूल्य एक देशके मूल्य की बराबर है और वैतनिक सिपाहियोंका मूल्यउनके हाकिमकी आज्ञाके बराबर। खुलासा यह कि किसी देश-सेवककी समता किसी वैतनिक व्यक्ति अथवा समुदायकी नहीं हो सकती। देश सेवक माननीय गोखले प्रत्यक्ष निदर्शन बनकर देशवासियोंको उसका नमूना दिखा गये हैं। विश्वास है, गोखले सेवासमितिका एक एक सेवक आगे चल कर एक एक गोखले में परिणत होगा। तभी कहते हैं, एकबार बोलो, गोपाल कृष्ण गोखले की जय! फिर कहो गोखले सेवा समिति की जय।

पण्डित विपिनबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैदरगंज कदीम लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

अवधवासीग्रन्थमाला रत्न १७

डब्लू० सी० बनरजी

सन् १९२१ ई०

उमेशचन्द्र बनरजी

कलकत्ते से मिलता हुआ खिदरपुर एक स्थान है। वहीं सन १८४४में २९ दिसम्बर को बाबू उमेशचन्द्र बनरजीका जन्म हुआ था। आपके पिता बाबू गिरीशचन्द्र बनरजी एक प्रतिष्ठित कुलीन ब्राह्मण थे। कलकत्ते में वह अटरनीका काम करते थे। उमेशचन्द्र की माता एक प्रतिष्ठित घरकी लड़की थीं।

कुछ बड़े होने पर माता पिताने उमेश बाबू को कलकत्ते के एक मदरसेमें पढ़ने को बैठाला। पर यह बड़े खिलाड़ी निकले। हजार चेष्टा करने पर भी इन्होंने पढ़नेमें जी नहीं लगाया। आगे बाबू गिरीश-चन्द्रने इन्हें ओरिएण्टल-एण्ड हिन्दू स्कूल में भरती करा दिया। वहां किसी प्रकार इन्होंने इण्टरन्स परीक्षाको पास कर लिया। आगे इनका जी पढ़नेमें नहीं लगा। एक दिन गत सन १८६१ में उमेश बाबू घरसे निकलकर रानीगञ्जकी ओर भाग गये। उस समय इनकी अवस्था केवल १७ वर्ष की

थी। इनके लापता होनेसे माता पिता बड़े घबड़ाये। पीछे बड़ी दिक्कतोंसे इनका पता लगाकर गिरीशबाबू इन्हें घर लेआये।

अब इनके पिता बाबू गिरीशचन्द्र को निश्चय हो गया कि उमेश अधिक विद्या नहीं पढ़ सकेंगे। यह समझकर उन्होंने विचारा कि उमेशचन्द्र को कहीं नौकर करा देना उचित है। उस समय मिस्टर डाउनिङ्ग साहब कलकत्ते में एक अटरनी थे। गिरीश बाबूने उन्हींके यहां इन्हें मुहर्रिरके तौर पर नौकर करा दिया। दूसरेकी नौकरी करने पर उमेश बाबू को चेत हुआ। पढ़ने में ध्यान नहीं लगाया, अपना अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट किया, बिना विद्या प्राप्त किये हमारी यह दशा हुई, एक वह आदमी हैं जिनके हम नौकर हैं और एक हम आदमी हैं, जो उनकी नौकरी करते हैं, हममें उनमें यह आकाश पातालका भेद विद्या न पढ़नेके कारण ही हो रहा है— इत्यादि बातों को शोच कर उमेश बाबू पश्चाताप करने लगे।

अपनी पूर्व अकर्मण्यता पर इस प्रकार पश्चाताप कर उमेश बाबूने अब दिल लगा-

भूल कर स्थिर किया कि, हुआ सो हुआ पर आगेका समय अब नहीं नष्ट होने देंगे। मनही मन यह बिचार कर उन्होंने उस अवस्थामें बाकी बच रहा एक मात्र अपनी भावी उन्नतिका उपाय कानूनका पढ़ना निश्चित किया। अब सारे खेल तमाशोंको छोड़कर उमेश बाबूने कानून पढ़ना आरम्भ किया। इनकी बुद्धि पहलेसे ही अच्छी थी केवल पढ़नेमें जी नहीं लगाते थे। अब मन और बुद्धि दोनों एकत्र कर यह पढ़ने लिखने में दत्तचित हुए। थोड़े ही दिनोंमें इनकी लेखनी शक्ति अद्भुत रूपसे बढ़ गयी। अब उमेश बाबूने उसका सहारा पाकर सन् १८६२ ई० में "बङ्गाली" पत्रका जन्म देकर देशसेवाकी ओर ध्यान दिया।

जब इन्होंने देशसेवाकी ओर ध्यान दिया, तब सारे देशने इन्हें अपना लिया। बम्बईके प्रसिद्ध पारसी व्यापारी मिस्टर रुस्तमजी जमसेद्जी जीजी भाईका नाम भारतके सम्पूर्ण विद्वान मण्डलमें प्रख्यात है। उन्होंने २ लाख रुपया सरकारको देकर यह प्रबन्ध कर दिया है, कि भारतके जो विद्यार्थी कानूनकी परीक्षा पास करनेको बिलायत जावें, इस रुपयेकी ब्याजसे वहां

उनको सहायता दी जाय। इसी प्रबन्धके अनुसार हर साल भारतके ४ विद्यार्थियों को विलायतमें जाकर कानून पढ़नेको छात्र-वृत्ति दी जाती है।

बाबू उमेशचन्द्र ने सन १८६४ में उक्त वृत्ति पानेके लिये सरकारसे निवेदन किया। सरकारने इनकी योग्यताकी परीक्षा लेनेके लिये एक सभा नियत की। सभाने इन्हें विलायत जानेके योग्य बतलाया। इसी वर्ष अक्टूबर मासमें आप विलायत गये। वहां 'मिडिल टेम्पल, नामक कानून विद्यालयमें बाबू उमेशचन्द्र बनरजीने जाकर नाम लिखाया और जी लगाकर पढ़ने लगे। आगे विलायतके मुख्य २ कानून वक्ताओं से मिलकर तथा उनके पास काम कर उमेश बाबूने अच्छी योग्यता प्राप्त की।

ऊपर कह चुके हैं, कि विद्या उपार्जनके साथ साथ अब उमेश बाबूने देश कार्योंकी ओर भी चित्त लगाया था। यह प्रवृत्ति उनकी विलायत में कम नहीं हुई वरन अधिक बढ़ गयी। संयोगसे उसी समय प्रसिद्ध देशभक्त दादा भाई नौरोजी भी विलायत में पारलामेण्टके मेम्बर थे। इनकी कृति इनके लिये सोनेमें सुगन्ध

हो गयी। उन्हींकी सलाहसे सन १८६५ में उन्होंने वहां 'लन्दन इण्डियन सोसाइटी' नामकी एक सभा स्थापित की। इस सभामें उसी वर्ष बाबू उमेशचन्द्र जीने २५ जुलाई को, 'भारतवर्षकी राजपद्धति कैसी सहोना चाहिये, इस विषय पर अति उत्तम व्याख्यान दिया। व्याख्यानमें उन्होंने कहा,- अङ्गरेजोंको भारतका राज्य भारतवासियों की सम्मतिसे करना चाहिये इस प्रकारका राज्य करनेसे भारतवासियोंको सुख मिलेगा और अङ्गरेजराज्य भी चिरस्थायी हो जायगी।

सन १८६८ ई० में बाबूउमेशचन्द्र बनरजी बारिस्टरी परीक्षा पासकर भारतवर्ष लौट आये। यहां आकर कलकत्ता हाईकोर्ट में आपने बारिस्टरी करना आरम्भ किया। इसी वर्ष आपके पिता बाबू गिरीशचन्द्र का स्वर्गवास हुआ। आगे, बाबू उमेशचन्द्र बनरजी, बारिस्टरी नाम डबलू० सी० बनरजी नामसे ख्यात हुए। कहते हैं, डबलू० सी० बनरजीने पहले पहल जिस मुकद्दमेको अपने हाथमें लिया था, वह एक दरिद्र स्त्रीका था। इनके निर्दोष साबित कर देने पर दौरा जजने उसे छोड़

दिया। साथही बाबू उमेशचन्द्रकी योग्यता पर जज साहब प्रसन्न हुए। उन्होंने इनकी तारीफ की। इस मुकद्दमेको मुफ्तमें करनेसे उमेशबाबूका बड़ा लाभ हुआ। चारों ओर यह प्रसिद्ध हो गये। इनके पास खूब मुकद्दमे आने लगे। धीरे २ इनकी लाख, सवा लाखकी सालाना आमदनी होगई।

सन १८८३ में प्रसिद्ध राजनैतिक व्याख्याता बाबू सुरेन्द्र नाथ बनरजी पर जो मुकद्दमा चला था, उसमें और सन १८९७ ई० में स्टेटसमैन-एण्ड-फ्रैंड-आफ-इण्डिया समाचार पत्र के प्रसिद्ध लेखक मि० राबर्ट नाइटके ऊपर जो मानहानि की नालिश हुई थी, उसमें आप बारिस्टर हुए थे। इन दोनों मुकद्दमोंको आपने बड़ी योग्यताके साथ मुफ्त चलाया। इस समयसे आपकी और भी अधिक ख्याति हो गई।

पाठक जानते हैं, सरकारकी ओरसे 'स्टैण्डिङ्ग कौन्सिल, नामकी कानूनी समितियोंपर सलाह देनेके लिये एक समिति है। यह कौन्सिल जब कानून बनाये जाती है, तब नये और पुराने कानूनोंकी बिवेचना करती है और सरकारको उनके भले बुरे

को सम्मति देती है । बाबू उमेशचन्द्र बनरजीने सन १८८१ ई० से सन १८८९ ई० तक अर्थात ६-७ वर्ष उक्त समिति में काम किया । भारत सरकार इनकी योग्यता पर प्रसन्न हुई और सन १८८४ ई० में इन्हें कलकत्ता हाईकोर्टका जज नियत करना चाहा । पर इन्होंने अपनी स्वतन्त्रता खोना पसन्द नहीं किया । अतएव हाई-कोर्टके जज पद को अस्वीकार कर दिया ।

उपरान्त सन १८८५ ई० में भारत-हितैषी मिस्टर ह्यूमकी सलाहसे भारतमें नेशनल कांग्रेस सभाकी उत्पत्तिका समय आया । बम्बई में उस सभाका प्रथम अधि-वेशन करनेका विचार स्थिर हुआ ।

देशसेवकों ने प्रथम कांग्रेस सभा में इन्हीं परम चतुर डबलू० सी० बनरजीको सभापतिका आसन देकर सम्मान किया । सभापति की हैसीयत से, उमेश बाबूने जो व्याख्यान दिया था, वह मनन करनेयोग्य है । पश्चात सन १८९२ में प्रयागमें हुई ८ वीं कांग्रेसके भी आप सभापति हुए । उमेश बाबू बाल विवाहके विरोधी थे । स्त्री शिक्षाके पक्षपाती थे । धर्म सम्बन्धमें एक बार उनको भ्रम हो गया था । यहां तक

कि वह ईसाई होनेको उद्यत हुए। पीछे हिन्दू धर्मग्रन्थोंके अवलोकन से उनका भ्रम दूर हुआ। तब वह हिन्दू धर्म के दृढ़ विश्वासी हो गये। वेदान्त ग्रन्थोंको आप अधिक पढ़ते थे। उमेश बाबू बड़े परोपकारी थे। उनका दान देश हित कार्यों के लिये ही होता था। आप कुटुम्बके सारे मनुष्योंके एकत्र रहनेकी प्रथाके विरोधी थे। पिछले समय उनको पढ़नेका बड़ा शौक था। अङ्गरेजी तथा बङ्गला दोनों भाषाओंके प्रायः सभी गद्य पद्य ग्रन्थों को उन्होंने पढ़ा था। चार्लस लेम्ब तथा बङ्किम बाबूकी पुस्तकों को आप बड़ी रुचिसे पढ़ते।

पाठक उमेश बाबूका जीवन चरित्र हम लोगोंको शिक्षा देता है, कि मनुष्य अपने जीवनकी प्रथम अवस्थामें चाहे जितना बिगड़ चुका हो, किन्तु जबसे ही दृढ़ सङ्कल्प होकर निज दशाको सुधारे, तबसे ही वह सुधरकर बाबू उमेशचन्द्र जैसा बड़ा आदमी बन सकता है। साथही भूल भटक कर भी किसी हिन्दूको अपना हिन्दू धर्म नहीं त्यागना चाहिये।

पण्डित शिवविहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैदरगंज कदील लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

जेवथ्यासी ग्रन्थमाला रत्न १८

दादा भाई नौरोजी

जून १९१२ ई०

दादा भाई नौरोजी।

दादा भाई नौरोजी का जन्म बम्बईमें ४ सितम्बर सन १८२५ ई० को हुआ था। ४ वर्षकी अवस्था में आपके पिता का शरीरान्त हो गया। आपकी माता पढ़ी लिखी विदुषी तो नहीं थीं किन्तु परम बुद्धिमती थी। उनकी यह प्रबल इच्छा थी, कि मेरा पुत्र विद्वान होकर संसारमें नाम और यश प्राप्त करे। उन्होंने दादा-भाईको शिक्षा दिलाने में किसी प्रकारकी कसर नहीं की। पांच वर्षकी अवस्था में इन्हें गुजराती पाठशालामें पढ़नेको भेजा। वहां का पढ़ना समाप्त होने पर बम्बईके 'एलफिन्स्टन इन्स्टीटिउट, में भरती करा दिया। इस इन्स्टीटिउट में दादा ने अपने गुणोंसे समस्त अध्यापकों को प्रसन्न किया। हर परीक्षा में इन्हें कुछ न कुछ पारितोषिक मिला। अङ्गरेजीकी प्राथमिक शिक्षा समाप्त कर वह उच्च शिक्षाका अभ्यास करने लगे।

मिसेज पोस्टन नामनी एक लेखिका ने

अपनी "पश्चिम हिन्दुस्थान„ पुस्तक में दादा भाईके विषय में लिखा है,—"उस समय विद्यार्थियोंमें एक छोटा परन्तु बड़ा तेज लड़का था। उसके तेजपुञ्ज और विशाल भाल तथा सतेज नेत्र देखकर देखनेवालेका मन उसकी ओर अपने आप खिंच जाता था। जब लड़कोंसे सवाल किया जाता था तब यह बाल-विद्यार्थी सबसे पहले अगाड़ी बढ़ता था। उसकी उत्सुकता को देखे मालूम होता था कि मानो मनही मन वह कह रहा है कि कब मेरी बारी आवे और कब मैं सवालका जवाब दूँ, गणित और सिद्धान्तके प्रश्नों को वह उसी क्षण बतला देता था। सवाल करनेकी रीति उसकी बड़ी विलक्षण थी। उसे अपने साथियोंमें अग्रसर होनेकी बड़ी प्रबल इच्छा थी। उसकी बुद्धिकी चपलता देखकर ऐसा मालूम होता है कि वह आगे कोई प्रसिद्ध पुरुष होगा।„ दादा भाईके मुख्य अध्यापक प्रोफेसर अलिवर कहा करते थे, "दादा भाई नौरोजी भारतकी भावी आशा है।„

दादा भाईकी योग्यतासे सन्तुष्ट होकर

फ़िन्सपल हार्कनेसने एक स्वर्ण पदक प्रदान किया। कुछ दिनों बाद यह एल-फ़िन्स्टन कालिज में गणित और पदार्थ विज्ञानके अध्यापक नियत हुए। इनकी शिक्षा शैलीसे विद्यार्थी बड़े सन्तुष्ट हुए। उपरान्त कालिजके मुख्य अध्यापक प्रोफेसर ओक्सफ़ पेटन बिलायत गये। उनके स्थान पर यह प्रधान अध्यापक नियत हुए। इसके पहले इतना उच्च और जिम्मे-दारीका पद किसी भारतवासी को नहीं प्राप्त हुआ था। विद्यासमिति की ओरसे सन १८५४ और ५६ की वार्षिक रिपोर्ट में इस श्रेष्ठ पद प्राप्त करनेके उपलक्ष्य में दादा भाईकी बड़ी प्रशंसा छपी। समितिके मन्त्री डाक्टर एमस्टाबेल साहबने लिखा, "यदि आप अपना कार्य-क्रम सरलता और शान्ति के साथ एकत्रित होकर चलाते रहेंगे तो देशके भूषण हो जांयगे।"

सन १८४५ से ५५ तक प्रायः १० वर्ष दादा भाईने इस पद पर काम किया। इस अध्यापकी के कार्यके साथ साथ आप (१) स्टडयटस-असोशियेशन (२) पारसी धर्म सुधारक-मण्डली ३ फ़रामजी-कावसजी

इन्स्टीटयूट ४ पारसी-व्यायाम-गृह ५ हिन्दू-पुनर्विवाहोत्तेजक मण्डली ६ विक्टोरिया एण्ड अलबर्ट-पदार्थ संग्रहालय और ७ पुत्री पाठशाला आदिके कार्यों में सम्मिलित रहे। बम्बई प्रान्त में सामाजिक सुधारके इतिहास में आप पुत्री पाठशालाओंके जन्मदाता समझे जाते हैं। सन १८५१में दादा भाईने 'रास्त गुफ्तार' नामक पत्रको जन्म दिया। ज्ञान प्रचारक सभा में आपने १८ व्याख्यान दिये। मातृभाषा गुजरातीके अतिरिक्त आपने लैटिन फ्रेंच, फारसी, मराठी तथा हिन्दी भाषाका अध्ययन किया।

सन १८५५ में इङ्गलैंडमें 'कामा कम्पनी' स्थापित हो रही थी। सबसे पहले इस कम्पनीका एक हिस्सा दादाभाईने लिया। विलायत में व्यापार करनेकी यह पहली भारतीय कम्पनी थी। दादा भाई इस कम्पनी में काम करने के लिये सन १८५५ में विलायत गये। व्यापारके साथ साथ इङ्गलैंड में रह कर दादा भाईने भारतके राजकीय विषयोंके अनेक जटिल प्रश्नोंको हल किया। भारतके दुःखका हाल विलायती

सरकारको सुनानेका कार्य पहले पहल दादा भाई नौरोजीने किया । सिविल सरविस परीक्षा में अङ्गरेजोंके साथ मुकाबला करने का सौभाग्य इस देशके युवकोंको दादाभाई के उद्योगसे प्राप्त हुआ । भारत और इङ्गलैंड वासियों में हेल मेल बढ़ाना, भारतीय प्रजा के दुःखोंको विलायतके न्यायप्रिय लोगोंके सामने निवेदन करना तथा भारतीय विद्यार्थियोंके लिये विलायत में शिक्षाकी व्यवस्था होना आपके कार्योंका उद्देश्य था । विलायत में रहनेसे दादा भाईका बड़े बड़े आदमियोंसे परिचय हुआ । अनेक सभाओं ने आपको अपना सभासद् बनाया । दादा भाईने जान डिकन्सन तथा अन्य भारत हितैषी सज्जनों की सहायतासे 'लन्दन इण्डियन सोसाइटी और 'ईष्ट ईण्डियन ऐसोसियेशन, नामकी दो सभायें स्थापित कीं ।

कुछ दिन बाद आप लन्दन विश्वविद्यालय कालिज में गुजराती भाषा पढ़ाने के लिये प्रोफेसर नियत हो गये । वहांकी विद्या समितिने आपको सभासद बनाया । इस समय पहले 'ईष्ट-इण्डियन असोसिए

शन में और पश्चात अन्य स्थानों में आपने भारतकी स्थिति पर अनेक व्याख्यान दिये अब सुहृद अङ्गरेजोंको भारतकी वास्तविक शोचनीय स्थितिका हाल मालूम हो गया। दादा भाईने पहले भारतकी वर्तमान दशा का चित्र अपने व्याख्यान में प्रत्यक्ष खींच कर लोगोंके सम्मुख खड़ा कर दिया पश्चात वहांके उदार और न्यायी पुरुषोंके चित्तको छोटी छोटी पुस्तकों में भारतकी वर्तमान दशाका वर्णन कर प्रकाशित किया। सन १८५९ में आपने भारतसचिव लार्ड स्टैनलेके साथ सिविल सरविस परीक्षाके नियमों में कुछ फेरफार करनेके निमित्त लिखा पढ़ीकी, किन्तु कुछ फल नहीं हुआ। तब उन्होंने भारतीय विद्यार्थियोंको विलायत जाकर ही सिविल सरविस परीक्षा पास करनेकी उत्तेजना दी। सन १८६०में 'कपासका सञ्चय, इसविषय पर मञ्चेस्टरमें व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान में आपके अनुभवकी बड़ी प्रशंसा हुई। सन १८६१ में पारसी लोगोंका धर्म और उनकी रीति रिवाज पर एक लेख पढ़ा। सन १८६५ में आपके उद्योगसे 'लन्दन इण्डियन सोसाइटी द्वारा संस्कृत

और अरबी भाषाके लिये परीक्षा में जो नम्बर कम कर दिये गये थे, उनको बढ़ाकर पूर्ववत कर दिया गया। सन १८६६ में "एथनालाजिकल-सोसाइटी,, में "यूरोप और एशियाके लोग,, विषय पर आपने कई व्याख्यानोंको पढ़कर सुनाया। अङ्ग-रेजों में भारतवासियों के सम्बन्ध में जो अनेक असत्य और असद् विचार पैदा हो गये थे उनका इन व्याख्यानोंसे बहुत लाभ हुआ।

सन १८६७ और ६८ में आपने "भारत सम्बन्धी इंगलैंडका कर्तव्य" मेसूर,, "इण्डियन सिविलसरविस परीक्षामें भारत-वासियोंको लेनेके लिये प्रार्थना, और अबिसीनिया युद्धका खर्च इन विषयों पर निबन्ध लिखा। कौसेलनात्मक स्कूल, कायम करनेके लिये सर स्टेफर्ड नार्थ कोट के साथ पत्र व्यवहार किया। 'इण्डियन असोसिएशनके कर्तव्य, तथा 'भारत में बांध और नहरोंके काम, इन विषयों पर लेख लिखकर प्रकाशित किया। इस भाँति १२-१३ वर्ष परिश्रम कर सन १८६९ में आप भारतवर्ष लौट आये। वहांसे लौट आने

पर बम्बई निवासियोंने आपका बड़ा इस्माल किया। अभिनन्दन पत्रके साथ २ कुछ धन तथा एक मूर्ति आपको भेंट दी। धनको दादाभाईने देश कार्यमें लगा दिया।

सन १८६९ में गोण्डलके महाराजके अनुरोधसे भारतकी स्थिति विषयपर व्याख्यान दिया। आगे "सन १८६९ का बम्बईके कपासका कानून" इस विषय पर लेख लिखा। उसके प्रभावसे भारत सचिव ने उक्त कानून को नहीं बनने दिया। सन १८७० में भारतकी आवश्यकताएँ और सन १८७१ में "भारतका व्यापार" "भारत में वस्तुओंकी व्यवस्था" इन विषयों पर लेख लिखकर प्रकाशित किया।

सन १८७३ में पारलामेण्टकी 'सिलेक्ट कमेटी' के सामने भारत सम्बन्धी कई बातोंकी गवाही देने आप फिर विलायत गये। उसके एक सालके बाद वहांसे लौट आये। वहांसे आने पर बड़ोदा राज्य में महाराज मल्हरराव गायकवाड़के यहां सन १८७४ में आप दीवान हुए किन्तु कुछ विशेष कारणसे आप शीघ्रही अलग हो गये। अनन्तर बम्बई म्युनिसिपल कार-

पोरेशन तथा 'टाउन कौन्सिल, के आप सभासद हुए। सन १८५५ में आप ग्रावड जूरीके सभासद हुए। सन १८८३ में सरकार ने जस्टिस-आफ-दी पीस, की उपाधि दी। सन १८८५ में बम्बई के गवरनर लार्ड रेने अपनी सभाका आपको सभासद बनाया। इसी वर्ष आपके विशेष उद्योगसे बम्बईमें "नेशनल-कांगरेस,, सभा स्थापित हुई। १८८६ में आप फिर बिलायत गये। हालबोर्नवरों की ओरसे पारलामेंट का मेम्बर होनेके लिये आपने प्रार्थना पत्र भेजा। पर कृतकार्य नहीं हुए। सन १८८६ में कलकत्ते की नेशनल कांगरेस सभाका सभापति निर्वाचितकर देशवासियोंने आप का सम्मान किया। १८९२ में भारतके भूत पूर्व बड़े लाट रिपन, बम्बईके भूतपूर्व गवरनर लाट रे तथा स्वर्गवासी ब्राडला साहबकी कन्या मिसेस ब्राडला बानर तथा विदुषी फ्लारेंस नाइटिङ्गलकी विशेष सहायता से सेन्ट्रल फिंसबरी की ओर से आप ७ जुलाई को पारलामेण्टके मेम्बर निर्वाचित हुए।

सन १८९३ में लाहौर में हुई ९ वीं

नेशनल काङ्गरेसके आप दूसरी बार सभापति हुए और सन १९०६ में कलकत्ते में हुई कांगरेसके आप तीसरी बार सभापति हुए. देशवासियोंने दादा भाई नौरोजीके देश-सेवा ढंगको बड़े प्रेमसे अङ्गीकार किया माननीय गोखलेका कहना है,—जो अपनी मातृ भूमिकी सच्ची सेवा करना चाहे वह दादा भाई नौरोजीके पदका अवलम्बन करें।, दादा भाई नौरोजीने निज योग्यता सम्बन्धमें अपनी जीवनी में लिखा है,-अब मैं जो कुछ हूँ वह सब अपनी माताकी बुद्धि और चेष्टा का फल हूँ। मातृभक्त भारतके इन सच्चे और अनुभवी नेताका गत सन १९१७ में ३० जून को स्वर्गवास हुआ।

पण्डित बिपिनबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैदरगंज कदीम लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

अवधवासी ग्रन्थमाला रत्न १९

सुरेन्द्रनाथ बनरजी

जून १९२१ ई०

सुरेन्द्रनाथ बनरजी।

बाबू सुरेन्द्रनाथ बनरजीका जन्म सन १८४० ई० में कलकत्तेके प्रसिद्ध कविराज श्रीयुत बाबू दुर्गाचरण बन्द्योपाध्यायके घर हुआ था। आपके पिता बाबू दुर्गाचरण डाक्टरी पास नहीं थे किन्तु कविराजी अ-र्थात आयुर्वेद चिकित्सामें आपका बड़ा नाम था। आप बड़े बुद्धिमान और कार्यकुशल थे। कार्यक्षमता और कर्तव्यपरायणता, इन दो गुणोंकी शिक्षा सुरेन्द्रनाथ जीने अपने पिताहीसे ग्रहण की थी। आपकी शिक्षाका आरम्भ जब आप ७ वर्षके थे, तबसे हुआ। पहले आप डोवटन कालिजमें भरती कराये गये। तब उक्त कालिज में यूरोपियन और यूरेशियन लोगोंके ही बालक अधिक पढ़ते थे। अतः सुरेन्द्र बाबूको अंग्रेजी भाषा में बोलनेकी अच्छी शक्ति हो गयी। १५ वर्ष की अवस्था में आपने एन्ट्रन्स परीक्षा पास की। एन्ट्रन्स में सुरेन्द्र बाबूने दूसरी श्रेणी हासिल की थी। सन १८६६ में सुरेन्द्र बाबूने दूसरी श्रेणी में बी० ए० पास किया

उस समय आपकी अवस्था १९ वर्षकी थी। डेविटन कालिजके प्रिन्सिपल मिस्टर सोइमने सुरेन्द्रनाथ बाबूका चमत्कार देख कर इनके पिता बाबू दुर्गाचरणसे इन्हें विलायत सिविल सर्विस परीक्षा पास करनेके निमित्त भेजने की सिफारिश की।

१८६८ में सुरेन्द्रनाथ विलायत गये। वहां जाकर आप युनीवरसिटी कालिज में भरती हुए। भारतके भूतपूर्व विलायती सचिव मिस्टर जानमारले उस समय वहां अध्यापक थे। जान मारले जैसे विद्वानसे शिक्षा पाकर बाबू सुरेन्द्रनाथकी अङ्गरेजी में योग्यता और भी अधिक बढ़ गयी। विलायत में ही आपने प्रोफेसर गोल्डस्टकर साहबसे संस्कृत भाषाकी शिक्षा पाई। सन १८६९की सिविल सरविस परीक्षा में ३०० परीक्षार्थी थे। उन में बाबू सुरेन्द्रनाथका नम्बर ३८वां था। पर आयुका झगड़ा पड़नेके कारण अधिकारियोंने आपका नाम सिविल सरविसकी सूचीसे काट दिया। बाबू सुरेन्द्रनाथ इस झगड़े को लेकर इङ्गलैंडकी सर्वोच्च अदालत तक लड़े। अदालत में आपकी जीत हुई। आपका नाम फिर

सिविलसरविसकी सूचीमें लिख लिया गया। इस झगड़े में एक वर्ष नष्ट होनेसे २ वर्ष की पढ़ाईको सुरेन्द्रनाथ बाबूने १ वर्ष में ही पूरा कर लिया। दुर्भाग्यसे आपके परीक्षा पास होनेका समाचार आनेके एक दिन पहलेही आपके योग्य पिता श्रीयुत बाबू दुर्गाचरण बनरजीका शरीरान्त हो गया। सिविलसरविस परीक्षा उत्तीर्ण होने का समाचार २१ जनवरी सन १८७० को आया और बाबू दुर्गाचरणजीका स्वर्गवास २० तारीख ही को हो गया। सिविल सर विस परीक्षा पास कर जब आप भारतवर्ष आये तो यहां सिलहट जिले में सरकारी मजिस्टर नियत किये गये। इस पदपर २ वर्ष भी आप काम नहीं कर पाये, कि एक संकट आ पड़ा। संकटका कारण यह था, "आपके सामने एक मुकद्दमा पेश हुआ इस मुकद्दमेंको "फरारी„की सूची में बिना लिखे हुए अभियुक्तके नाम आपने अपने दस्तखतसे वारन्ट निकाल दिया। इसप्रकार अठपदस्थके कारण बिचार में आपने झूँठी प्रतिज्ञा की इस अभियोग पर मुकद्दमा कायम हुआ। बाबू सुरेन्द्रनाथ ने

कहा, हमने जान बूझकर ऐसा नहीं किया। और कागजोंके साथ यह भी हमारे सामने दस्तखतोंको पेश हुआ। हमने अन्य कागजोंकी तरह इस पर साधारण समझ दस्तखत कर दिया। पर सरकारको इस बयान से संतोष नहीं हुआ। आगे अधिकारियोंने अनुसन्धान करके छोटे मोटे सब १५ अभियोग उपस्थित किये। सरकारने अभियोगोंकी जांचके लिए एक कमीशन बैठाया। कमिश्नरोंकी निगाह में सुरेन्द्र नाथ अपराधी प्रमाणित हुए। उनकी रिपोर्ट बङ्गाल सरकारकी मारफत भारत सरकारको भेजी गई। भारत सरकारने बा० सुरेन्द्रनाथ को ५०) रुपया मासिक देकर मार्च सन १८७४में सरकारी नौकरीसे अलग कर दिया। भारतके इन युवकने अपनी अलौकिक बुद्धिमत्ता और परिश्रम द्वारा जो फल प्राप्त किया था वह इस भाँति नष्ट हो गया, अथवा यों कहिये बाबू सुरेन्द्र नाथ बनर्जीके जीवन नाटकका इस स्थानमें पहला दृश्य समाप्त होकर २ रा आरम्भ हुआ।

नौकरी छूट जाने पर आप विलायत

गये । वहाँ भारत सरकारके विरुद्ध अपील की । पर फल कुछ न हुआ । तब आपने बारिस्टरी पास करनेका सङ्कल्प किया। यह सङ्कल्प भी आपका विफल हुआ । भारत सरकारके अपराधी समझ इन्हें परीक्षा में नहीं शरीक किया गया । लाचार निराश होकर बाबू सुरेन्द्रनाथ भारतवर्ष लौट आये । यहाँ आकर श्रीमान ईश्वर चन्द्र विद्या सागरकी सम्मतिसे आपने सन १८७६ में "मेट्रोपालिटन इन्स्टीटिउशन" में छात्रों को अङ्गरेजी पढ़ाना स्वीकार किया । वहां आपको २००) मासिक मिलने लगा। थोड़े ही दिन बाद "सिटी स्कूल" खुला श्रीमान विद्या सागरकी अनुमतिसे आप वहाँ भी पढ़ाने लगे। १८८१ में विद्या सागर का स्कूल छोड़कर आप "फरीचर्च कालिज" में शिक्षक हुए । आगे बाबू सुरेन्द्र नाथ जीने सन १८८२ ई० में अपना एक निजका स्कूल खोला । पश्चात वह रिपन कालिज में परिणत हो गया । सन १८८८ में बङ्गालके छोटे लाट साहबने रिपन कालिजका निरीक्षण किया । उन्होंने अपनी सम्मतिमें लिखा,—"रिपन कालिज

जैसे प्राइवेट कालिजको सरकारसे सहायता मिलना आवश्यक है। उच्च शिक्षाका अधिकार सर्वसाधारणके हाथमें देनेसे कुछ हानि नहीं है। कालिजकी तरक्कीके लिये उसके अध्यक्षने जो उद्योग और परिश्रम किया है वह प्रशंसनीय एवम सराहनीय है। रिपन कालिजकी व्यवस्था ठीक २ रखना एक आदमी द्वारा सहज बात नहीं है। पर उसके वर्तमान कार्यकर्ता अपना निजका काम करके भी कालिज तथा उसकी दो शाखाओंका काम बड़ी उत्तमता के साथ करते हैं। इससे उनकी कार्य क्षमता तथा दीर्घ उद्योग भलीभांति प्रकट होता है।, इन विद्यालयोंमें लग भग १५ सौ विद्यार्थी पढ़ते हैं। सन १८६१ में 'बंगाली, अङ्गरेजी साप्ताहिकपत्र का जन्म हुआ। सन १८७८ में बङ्गाली पत्रके स्वत्वाधिकारी बाबू बेचारामने उस पत्रका अधिकार बाबू सुरेन्द्रनाथको दे दिया। कुछ दिन बाद आपने उसे दैनिक कर दिया। कहना नहीं होगा राजकीय स्वत्व क्या वस्तु है, इसका ज्ञान आपने शिक्षित समाजको पूर्ण रूप से अपनी वक्तृता तथा लेख द्वारा करा

दिया। इस देशसेवा में आपको अनेक बार घोर कष्टोंका सामना करना पड़ा। २८ अपरिल सन १८८३ के "बंगाली, में सुरेन्द्र बाबूने हाईकोर्टके एक जज की बाबत कुछ लिखा। जजने मानहानिकी नालिश कर दी। उसमें आपको २ मासके लिये कारागार दण्डका हुक्म हुआ। देशवासियोंने बड़ा शोक मनाया। बंगाल निवासियोंने उनके कारागार जानेके दिनसे शोक सूचक काले वस्त्रोंको धारण किया। बारिस्टर लाल मोहन घोषको अपील करनेके लिये विलायत भेजा। कारागारसे छूटने पर ४ घोड़ोंकी गाड़ी पर बिठाकर लाखों बंगाली जय जयकार शब्द करते हुए उनको घर लाये। एकही दिन ३ बड़ी सभाएं हुईं। सन १८७६ में इण्डियन ऐसोसिएशन, सभाका आपने स्थापन किया। उसी दिन आपका एकलौता पुत्र स्वर्ग सिधारा पर आप सभा में पधारे और सभाके उद्देश्योंको वर्णन किया। आगे विलायत में भारत दशाका हाल वर्णन किया। भारतवासी बुद्धि, विद्या आदि किसी बात में विलायत वासियोंसे कम नहीं है। यह आपकी वक्तृताओंसे

इंगलैंड वासियोंको अच्छी तरह मालूम हो गया। सन १८९५ में पूनामें और सन १९०२ में अहमदाबाद में अर्थात कांग्रेस सभाका दो बार सभापति बनाकर देशवासियोंने आपका सम्मान किया। पूनाके विद्यार्थियों ने आपको मान पत्र दिया। उत्तर में आपने कहा-"राजनैतिक काम मेरे हाथोंसे कितने ही हुए हों परन्तु शिक्षकके नातेसे जो काम मैं करता हूँ वह चिरकाल तक बना रहेगा। युवा पुरुषोंके मन पर शिक्षाको संस्कार डालनेका काम मेरे सुपुर्द किया गया है, इस बातका मुझे बड़ा आनन्द और अभिमान है।" सामाजिक और राजनैतिक सुधारके विषय में आपने कहा, "विद्यार्थियोंको राजनैतिक चर्चा में योग देना चाहिये यह हमारी सम्मति है। विद्यार्थियोंको इतिहास मनन अवश्य करना चाहिये। विलायत में राजनैतिक चर्चा करनेका विद्यार्थियों को पूर्ण अधिकार है। प्रत्येक व्यवसायकी शिक्षा पानेके लिये अभ्यास करना होता है। तब राजनैतिक चर्चाका अभ्यास विद्यार्थी लोग न करें यह हमारी समझ में ठीक नहीं आता।

आपका कहना है "किसी कार्यको आरम्भ किया जाय किन्तु उसकी बुनियाद धर्म और नीति के अनुसार डालना चाहिये। तभी कार्य में सफलता प्राप्त होगी। धन, कीर्ति, विद्या कोई भी वस्तु प्राप्त हो अथवा नहीं पर धर्म नीतिका परित्याग करना तथा उससे विमुख होना उचित नहीं है। भारत सरकारकी शासन प्रणाली में जो दोष हैं, उन में सुधार करनेके लिये आप यत्न कर रहे हैं। अंगरेजी सरकार को आप बहुत अच्छी समझते हैं। आपका विश्वास है, "भारतवासी ज्यों ज्यों उन्नति करते जायंगे त्यों त्यों सरकार अधिकार प्रदान करती जायगी। कलकत्ते में "शिवाजी उत्सव,, का आपने प्रचार किया। बंगालियों में वीर पूजाका अंकुर आपने उत्पन्न किया। व्याख्यान देनेकी शक्ति आप में अद्भुत है। बिना सोचे विचारे तत्क्षण हर विषय पर आप व्याख्यान दे सकते हैं। अंगरेजी में आपकी वक्तृत्व शक्तिको देखकर बड़े २ अंगरेज चकित होते हैं। इस समय आपकी अवस्था ६८ वर्ष की है।

कई वर्ष हुए जबकि संसारकी सम्प्रदाद्-कीय सभा में आप भारतके प्रतिनिधि हो कर विलायत गये थे। वहां आपके व्याख्यानसे प्रसन्न होकर कुछ सज्जन और विदुषी महिलाओंने कहा,—यदि सुरेन्द्र बाबू जैसे ७ मनुष्य भारतवर्ष में हों तो भारत आज स्वराज्य पाने के योग्य है।" उत्तर में आपने कहा,—"भारतके योग्य पुरुषों को श्रेणी में छोटे दरजेका एक साधारण पुरुष मैं हूँ। मेरे जैसे भारत में ७ नहीं अनेक मौजूद हैं।"

पण्डित शिवबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैदरगंज कदीम लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

अवधवासी ग्रन्थमाला रत्न २०

हजरत ईसामसीह

सन् १९३१ ई०

हजरत ईसामसीह

सन् ईस्वीके पूर्व एशियाके इनके जूडा प्रदेश में हजरत दाऊदके वंश में कौमारी मरियमके गर्भसे हजरत ईसाका जन्म हुआ था। मरियमका विवाह नाजरथ नगर निवासी यूसुफ बढ़ई के साथ हुआ था। दम्पति सहवास के पूर्व मरियम गर्भवती जान पड़ी। यूसुफने मरियमको व्यभिचारिणी समझ त्यागनेका विचार किया। किन्तु ईश्वरके दूतोंने यूसुफसे स्वप्न में आकर कहा कि इसे मत निकालो। इसके जो गर्भ है, वह परमेश्वरका पुत्र है। अतः इसे स्वीकार करो और इसके जो पुत्र हो उसका नाम ईसू रखो। इसी ईश्वर वाक्यानुसार यूसुफ ने मरियमको स्वीकार किया और बालक होने पर उसका नाम ईसू रखा।

उन्हीं दिनों ज्यूडियाके बादशाह हिरोद राजाको यह ज्ञात हुआ कि मेरे शत्रु का जन्म हो गया।

अतः उसने आज्ञा दी कि २ वर्ष के भीतर जितने बालक उत्पन्न हुए हों, वह सब मार डाले जांय। इस आज्ञाके निकलनेपर देवदूतने यूसुफको स्वप्न दिया कि तुम बालक और उसकी माताको लेकर मिस्र चले जाओ। उन्हें वहांसे इसराइल देश चले जाने का स्वप्न हुआ। वहां जाकर वह नासरत नगर में पुत्र स्त्री सहित रहने लगे। ईसाई धर्म पुस्तक मती में ईसाका जीवन इस प्रकार लिखा है। किन्तु लूका में दूसरे प्रकार वर्णित है। उसमें लिखा है,—

जिस समय मरियम गर्भवती थी, उस समय कैसर औगुस्तुसने प्रत्येक देशवासी को अपना २ नाम लिखाने की आज्ञा दी। सब लोग नाम लिखाने को चले। यूसुफ भी मरियमके साथ बैतलहम नगर नाम लिखाने गये। वहाँ मरियमके पुत्र उत्पन्न हुआ। सराँय में स्थान न मिलनेके कारण मरियमने पुत्रको वस्त्र में लपेट कर चरनी में रख दिया। आठवें दिन पुत्रका नामकरण हुआ। देवदूतकी

पूज्यआज्ञानुसार नाम ईसू रखा गया।
जब मरियम पवित्र हुई तब दम्पति
बालकको प्रभुके सम्मुख रखने को
यरूसलम गये। प्रथाकी व्यवस्थानुसार
वहां सब कृत्य किया गया। पश्चात
वह अपने नगर नासरत लौट आये।
वह प्रतिवर्ष फसह पर्वपर यरूसलम
जाया करते थे। जब ईसा १२ वर्ष के
थे तब इसी पर्वपर यरूसलम से
लौटते समय पीछे रह गये। एक
दिनका मार्ग चल चुकने पर जब ईसा
न मिले तब दम्पति फिर पीछे लौटे।
ढूढ़ते २ तीन दिनके पश्चात एक
मन्दिर में यहूदी विद्वानोंके साथ
उसे बहस करते पाया। वह लोग
इन्हें बहस करते देख विस्मित हुए
आगे अपने साथ नासरत ले आये।

इसी समय ऊंटके रोमोंका वस्त्र
पहने तथा कटि में चर्म बांधे, टिड्डी
और मधुभोजी यूहन्ना नामक एक
व्यक्ति यहूदिया जङ्गल में लोगों को
दीक्षा दे रहा था। ईसाने भी उसके
पास जाकर दीक्षा ली। आगे चलकर
चौथे अध्यक्ष हेरोदेस के दोषोंको

यहूदियोंमें प्रकट किया। इसपर हेरोद चिढ़ गया। उसने यूहन्नाको कैद कर दिया। यह समाचार सुन ईसामसीह नजार छोड़ समुद्रतटस्थ कफर्नाहूम नगरको चले गये। वहाँ अपने को ईश्वरका पुत्र बतलाकर उपदेश करने लगे। आगे सारे गलील देशमें आराधनाकी सभाओं द्वारा उन्होंने अपने उपदेशका अच्छा प्रभाव जमाया। अब उनके अनेक शिष्य हो गये। उनमें १२ मुख्य शिष्योंको निर्वाचित कर ईसाने उनका नाम प्रेरित रक्खा। इन्हीं १२ शिष्यों में एक था नाम यहूदाह था। उसीने आगे चलकर ईसामसीह को पकड़ा दिया।

ईसामसीह का उपदेश था,— "अपने शत्रु के साथ भी भलाई करो यदि कोई तुम्हारे बायें गालपर थप्पड़ मारे तो तुम अपना दाहिना गालभी उसकी ओर फेर दो। याचकों से विमुख न हो। पापी लोग भी अपने मित्रोंसे प्रेम करते हैं। भलाई करने वाले के साथ दुष्ट भी भलाई करते हैं। किन्तु श्रेष्ठ वह है जो

अपने से घृणा करे उसके साथ तुम प्रेम करो और जो अपनी बुराई करे, उसके साथ तुम भलाई करो। जैसा तुम अपने लिये चाहते हो कि अन्य लोग हमारे साथ ऐसा करें वैसा ही बर्ताव तुम अन्योंके साथ करो।" ईसा के उपदेशोंका यही सारांश है।

यह उपदेश अपने शिष्यों सहित ईसा ग्राम २ देते फिरते थे। धीरे धीरे एक बड़ा समुदाय उनका अनुयायी हो गया। पर यहूदी पुरोहित ईसा को अपना शत्रु समझते थे। एक समय ईसा जलपाई नामक पहाड़ पर रहकर मन्दिर २ उपदेश कर रहे थे। दिनभर उपदेश करते थे। और रातको पहाड़ पर चले जाते थे। यहूदी पुरोहितोंने उनके उपदेशसे अपनी हानि समझ उनके मारनेका प्रयत्न किया। इस प्रयत्न में उन्होंने ईसाके शिष्य यहूदाह को मिला लिया। उसने इन्हें पकड़ा देनेका वचन दिया।

गुरुवारको शामको कुछ दुष्ट विचारवाले पुरोहित मशाल लेकर ईसाके वासस्थान पहाड़पर गये। वहां

जाकर उक्त विश्वासघाती शिष्यकी सहायतासे ईसाको पकड़ लिया और मनमाने अपराध लगाकर ईसा को कूटनीतिज्ञ एन्नास नामक पुरोहितके पास विचारार्थ लेगये। उसने अपने जामाता कयाफासके निकट इन्हें भेजा। वहाँ सान्हेड्रिन समितिने ईसाको देव विद्वेषी ठहराकर प्राण-दण्ड की आज्ञा दी। दूसरे दिन फिर विचार हुआ और प्राणदण्डही निर्धारित हुआ। तब रोम राज्यका प्रभाव अधिक था। उनके सम्मुख यहूदी लोगोंको प्राण दण्ड देनेका अधिकार नहीं था। अतः उन्होंने रोमशासन कर्ता पिलेटके पास न्यायार्थ ईसाको भेजा। पिलेटने ईसाको निर्दोष ठहराया। किन्तु यहूदियोंने गड़बड़ किया साथ ही पिलेट को यह ज्ञात हुआ कि वह गालिलीके निवासी हैं। अतः उन्होंने ईसाको वहां के राजा हेरोद् के पास भेज दिया। हीरोदने ईसाको निर्दोष समझ, फिर पिलेटके पास वापिस भेजा। इधर यहूदियोंने राज्य-विप्लव होनेका भय दिखाया। लाचार

निर्दोष होने पर भी पिलेटने ईसाको यहूदियोंके हवाले किया। निदान दो साथियों सहित ईसाको शूली दी गयी। शूली पर चढ़ते समय चिल्ला कर ईसाने कहा,-"हे पिता मैं अपनी आत्मा तेरे हाथ सौंपता हूँ"। उपरान्त प्राण-त्याग दिया„। लूका पर्व २३ में इसी प्रकार उल्लेख है।

इसाई धर्म पुस्तक इंजील में हजरत ईसामसीहके अनेक चमत्कारों का वर्णन है। उन्होंने अन्धोंको नेत्र दिया, मुर्दोंको जिन्दा किया, कुष्ठियोंको चङ्गा किया, ५ हजार आदमियों की दावत एक खुराकसे की, समुद्रके तूफान को रोका, पानी पर पैदल कई कोस तक चले, सूर्य की भी चमक दिखाई।

बाइबिल में लिखा है,—मरनेके पश्चात यहूसलमें हजरत ईसामसीह कब्र में दफन कर दिये गये। पश्चात वह समाधिसे जीवित होकर ४० दिन तक उपदेश करते रहे। उपरान्त ३३ वर्षकी अवस्था में इस संसारसे चल दिये। आज २० वीं शताब्दीके लोग

चाहे ईसाके इस चमत्कारपर विश्वास नहीं करें, पर फिर भी यह सब कोही मानना पड़ेगा कि भूमण्डलके धर्म प्रचारकों में गौतम बुद्ध के बाद हजरत ईसामसीहका ही दर्जा है।

ईसामसीहके सदुपदेशों द्वारा ही पश्चिमीय जगत की उन्नति हुई यह सबको मानना होगा। उन्होंने देशोद्धारके निमित्त अपने को बलिदान कर संसारके सामने यह आदर्श रख दिया कि बिना आत्मिक बलिदान, बिना स्वार्थ त्याग और बिना संसारकी भलाईका हार्दिक प्रयत्न किये किसीको महात्माकी पदवी नहीं प्राप्त हो सकती, न किसी देशकी उन्नतिही हो सकती है। हजरत ईसामसीहका जीवनचरित्र इस बात का एक जीता जागता उदाहरण है।

दुःखका विषय है कि आपका अनुयायी यूरोपीय संसार आज आपके उपदेशोंका उपमर्दन कर रहा है।

पण्डित शिवबिहारी लाल बाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैदरगंज कदीम लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

सत्यवादी ग्रन्थमाला रत्न २१

थावरकी सती देवी

जून १९३१ ई०

थावरकी सती देवी।

अवध अन्तर्गत लखनऊ जिलेमें मलिहाबाद स्टेशनसे उत्तरकी ओर ४ मीलकी दूरी पर थावर एक विशाल ग्राम है। इस ग्राम की पूर्व ओर देवीजीका और पश्चिम की ओर श्रीभगवान विष्णुका मन्दिर है। बस्ती में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवम् शूद्र चारों वर्णके लोग अपनी २ मर्यादाओंके भीतर रहकर सुखसे निवास करते हैं। इस सुख समृद्धिका कारण इस कलियुगमें भी सत-युगका अनुभव करानेका निदर्शन, इस थावर भूमिमें थावरकी सती देवीका अनूठा चरित्र एवम् माहात्म्यही। पाठक! थावरकी सती देवीका माहात्म्य प्रत्यक्ष देखनेके लिये आजसे ११० वर्ष पूर्वका इतिहास सा-मने रखिये अथवा और ४०-४५ वर्ष उस समयसे और आगे बढ़ जाइये। फिर देखिये! अंग्रेजी राज्य सूर्यका उदय हो रहा है, यवन राज्यचन्द्र, दिनकर की किरणोंके विकाशसे प्रभाहीन हो रहा है। हिन्दू नरेश इधर उधर प्रातःकालके नक्षत्र जैसे

दृष्टिगोचर हो रहे हैं। भारत साम्राज्यका अद्भुत दृश्य नेत्रोंके सामने है। ऐसे ही समय शृङ्गार वंशके भूषण ठाकुर कुशल सिंह अपने दो पुत्रों, ज्येष्ठ हिमञ्चल सिंह और छोटे जामकी सिंह जी को गोद में बैठाए अपनी छोटी जमीन्दारीके भीतर रहकर समयकी परिवर्तनशीलताका खाका खींचकर मानो उनके सामने रख रहे हैं। पर बाल्यावस्था भी बड़ी विचित्रावस्था होती है। उधर भारतका इतिहास उलट पलट रहा है, इधर ठाकुर कुशलसिंह के दोनों दुलारे एकदम निर्द्वन्द संसारकी चिन्तासे बिलकुल विरक्त अपने खेलमें मग्न हो रहे हैं। भविष्यका इन्हें अभी कुछ ध्यान नहीं है। इधर इनकी यह लीला, क्रीड़ा माता पिताके मन को मुग्ध कर रही है, उधर अपने पिताके अजिरमें सखोंसे खेल कूद कर अपनी तोतली बातोंसे फिर माता पिताके मोदको बढ़ा रहे हैं। इस समय कोई नहीं जानता कि यही कुशल-सिंहके प्रिय पुत्र, हिमञ्चलसिंह और यही कभी देखो किसी दिन सीता रामके जैसे, किसी दिन पाण्डवों भीमके जैसे किसी दिन

रुक्मिणीकृष्णके जैसे विवाहे जाकर सुख पावर आपकी कीर्ति समृद्धिको विस्तार कर यहाँ गहवार-वंशको पूज्य बनावेंगे । जो हो समय पाकर ठाकुर कुशल सिंहके दोनों लाड़िलोंका समयके अनुकूल शुभ धामके साथ विवाह हुआ । सौभाग्यसे सतीजी बड़े पुत्र हिमकमलसिंह जीको व्याही गयीं । विवाह होने पर दोनों ही सौन्दर्य, अयु, धर्म, शील, धैर्य इत्यादि में समान होनेके कारण अत्यन्त सुखी हुए । आगे उत्तरोत्तर उनका आनन्द वृद्धि पाता गया और पदार्थ छायाकी भाँति बढते २ दम्पति के प्रेमानन्दकी सीमा न रहा । अनन्तर एक आनन्द रूपिणी, गहवार वंश वन्दिनी, दम्पति प्रेमानन्दिनी, कुशल कुल कुमोदिनी कन्याका ठाकुर हिमकमलसिंहजीके गृह सती के उदरसे शुभ मुहूर्तमें जन्म हुआ । पर सती जी इस कन्या सुखका अनुभव अधिक दिन नहीं कर सकीं । कुछ कालके पश्चात्‌ही वह वसुदेव देवकी जैसी मायारूपिणी देवि स्वरूपा कन्या अन्तर्हित हो गयी । तदन्तर वह पुण्यात्मा पतिपत्नी दोनोंही ठाकुर जानकी सिंहजीकी सन्तानको ही अपनी

प्रिय सन्तान समझते रहे। ठाकुर रामकी [illegible] सजीके घर रघुनाथसिंहजीका जन्म हुआ। कालान्तर में ठाकुर रघुनाथ सिंहजीके घर दो पुत्ररत्न उत्पन्न हुए। बड़े पुत्रका नाम ज्योतिषी पं० ब्राह्मणोंने सरस्वती वत्स रखा और द्वितीय पुत्रका शुभनाम शारदा वत्स। श्रीयत ठाकुर सरस्वती वत्सके घर (१) ठाकुर कलिका वत्सजी (२) श्रीजगदम्बा वत्सजी और (३) चिरञ्जीव दुर्गावत्स जी, इन ३ पुत्रों का क्रमागत शुभ मुहूर्तों में जन्म हुआ। दुर्भाग्यसे इन होनहार सुपुत्रोंके पूज्य पिता ठाकुर सरस्वती वत्सजीका जीवन अल्प हो गया। अन्यथा पावरका यह गहवार वंश सर्व प्रकारकी सुखसमृद्धिके लिये इस प्रान्तमें दृष्टान्त योग्य है। पाठक! अब फिर उसी समयका स्मरण कीजिये, जब इन वर्तमान पावरस्थ गहवार वंशके सुयोग्य पुरुषोंके पूर्व पुरुष अर्थात इनके दादा परदादा एवम दादी परदादी वही परमपूज्य दम्पति ठाकुर हिम्मतसिंहजी और उनकी पतिव्रता पत्नी आजसे प्रायः ९० वर्ष पूर्व अपने उदार और पवित्र जीवन चरित्रोंसे इस पावर भूमिको पालन कर रहेहैं। यह देखो! आज...

यह थावरमें श्रीमद्भागवतकी कथा श्रवण कर रहे हैं, यह देखो ! आज कथा समाप्त होने पर वह यज्ञ विधानसे हवन कर याज्ञिक पंडितोंका पूर्णसम्मान कर रहे हैं। यह देखो ! कथा वार्ता खतम होने पर आज वह ब्राह्मण भोजन, दरिद्र भोजन एवम बिरादरी भोजन आदि शुभ कार्योंके पवित्र प्रभावसे थावर भूमिको जगमगा रहेहैं। इन महाव्रतवन्तोंको निज स्वार्थकी कुछ भी परवाह नहीं है। आज एक प्रहर यह थावर में हैं, आज ही दूसरे प्रहर यह प्रयाग राजकी यात्राको जा रहे हैं। यह धन्य हैं, यह जीवन मुक्त हैं, यह संसारके हमारे सबके पूज्य हैं, ईर्षा द्वेषादि समस्त दोषोंसे रहित परम पवित्र यह हम सबके अनुकरणीयहैं। इनके जीवन चक्रकी ओर जरा देखो ! आज यह प्रयाग में हैं, कल यह काशी में होंगे, परसों इनके दर्शन जगन्नाथपुरी में मिलेंगे, आगे फिर सेतुबन्ध रामेश्वर और बदरिकाश्रममें इनके चरणोंकी धूल पड़ेगी। यह गृहस्थ भी क्या हमारे तुम्हारे जैसे पेटमार, लट्ठमार, स्वार्थलोलुप, देशके शत्रु, प्राचीन भारतका गौरव नष्ट करनेवाले गृहस्थ हैं ? नहीं !

नहीं! भारतकी वैदिक कर्मयोगकी मूर्त्ति मान हृदय दिखलानेवाले यह भारतके जीवन्मुक्त गृहस्थ हैं। इन्हें अपने वस्त्रों की चिन्ता नहीं, इन्हें अपने भोजनोंकी चिन्ता नहीं, इन्हें अपने पात्रोंकी चिन्ता नहीं, यह देशके दुःखसे दुःखी होते हैं, यह दरिद्रोंकी दीन दशाको देख कर विचलित होते हैं, यह परोपकार व्रतके सामने अपने स्वार्थोंको तिलाञ्जलि देते हैं। इन्हींका अनुकरण कर अपार संसार सागरके दुःखोंके जहाजका केवट बनकर देशके बुद्धिमान विद्वान एवम यशस्वी, लोग अपने देशका अपनी मातृभूमिका, अपनी प्राणप्यारी जननी का दुःख मोचन करते हैं।

इस प्रकार देशको अपने अनूठे चरित्रों का अनोखा दृष्टान्त देकर ठाकुर हिमञ्चल सिंहजी सन १८५६ ई० के चैत्र मास में इस असार संसार से सदाके लिये नाता तोड़कर चल दिये! वह चल दिये सही किन्तु उनकी सहभा पत्नीके लिये अभी तक स्वर्गका परवाना नहीं आया। बिना पास बिना टिकट, बिना ईश्वरकी आज्ञा वह संसार को त्याग कर दूसरे संसारको कैसे जाय? पर

पतिव्रता तो पतिव्रता। एक संसार क्या अगणित संसारोंके रहते भी पतिके प्रेम में लीन होकर, प्रेमावेश में निमग्न होकर, सारी मायाको एक में मिला कर पतिव्रता स्त्री अपने पातिव्रत धर्मके बल, अपने वाञ्छित स्थान को, अपने पतिदेवकी बगल में निर्विघ्न पहुँच कर, दृढ़ता पूर्वक आसन ग्रहण कर सकती है। फिर राजर्षि हिमञ्चल सिंहकी सती देवी अपने पतिको छोड़ कर भला इस संसार में कब रहने लगी। पतिकी रथीके साथ २ वह ब्रह्मावर्त तीर्थके इस ओर गंगा तटपर चिताके ऊपर बैठकर अपनी आत्माको पतिदेवकी आत्मा में मिलाकर उस परब्रह्म भगवानकी परम ज्योति में मिलने को कटिबद्ध हुईं। पर सतीका धर्म कहांतक सच्चा है, इसका निर्णय करने के लियेही मानों भगवानने पुलिसके कर्मचारियोंको सतीके सम्मुख भेजकर कहा-खबरदार! चितापर मत बैठना। अंग्रेजी राज्यमें सती प्रथाको बन्द करदेनेके निमित्त आईन पास हो चुका है। यह देखो! आईनकी अमुक धाराके अनुकूल कोई स्त्री अपने मृत पतिके साथ जीवित चितापर बैठकर

सती नहीं हो सकती ! इससे जाओ ! जाओ ! जीती जागती लौट जाओ ! यह कानून तुम्हें सती नहीं होने देगा ।, लाचार आईन की मर्यादा रक्षाके निमित्त हिम्मतसिंहकी यह पतिव्रता पत्नी गङ्गातटसे लौटकर बाहर ग्रामके पश्चिम विष्णु भगवानके मन्दिर में एक वृहद वाटिकाके भीतर सकल अलङ्कारों को त्याग कर, केवल निज पतिके वस्त्रोंको धारणकर, अल्प दुग्धाधार रहकर अपने सतीत्वकी रक्षा करने लगी । इसभांति प्रायः ६ मास व्यतीत हुए । अब इनके सतने स्वरूपही सम्पूर्ण शक्तिरूपी दैवी शक्तिमें उन्हें परिपूर्ण कर दिया । इसी शक्तिके बल उन्होंने अपनी आत्माको अपने पतिकी आत्मा में मिलानेके लिये राज-आईनको बिना भङ्ग किये ईश्वरसे सती होनेके निमित्त अल्पावकाश प्रदान करनेके लिये प्रार्थना की । भगवानने उनकी प्रार्थनाको स्वीकार कर विद्युत छटाकी चमक जैसे सती होने भरके लिये उस स्थानको आईन रहित कर फिर ज्योंका त्यों कर दिया । इसी समय अर्थात सन १८१७ ई० में अगहन शुक्ला दशीको यह देवि हुआ, पूज्य ठाकुर

ठिमजूर्सिंहजीकी पतिव्रता पत्नी यहीं सती होकर पतिकी आत्मामें लीन होगयी। तभीसे उनके माहात्म्यमें थावरकी उन्हीं सती देवीका यह मेला होता चला आता है। वास्तव में थावरकी यह सती देवी साक्षात दैवीशक्ति सम्पन्ना सती हुई थीं। उनकी इस शक्तिके सम्बन्ध में अनेक आख्यायिकायें हैं, किन्तु हम उनको नहीं कहकर केवल दैवी शक्तिके महत्वको ही कहेंगे। इन सती देवीके सती होते समय अङ्गपर जो वस्त्र थे वह उनके साथ साथ अग्नि ज्वालासे भस्म होतेथे अर्थात जितना उनका शरीर जलता था, उतनाहीं उनका वस्त्र जलता था। न वस्त्रसे अधिक शरीर जलता था और न शरीरसे अधिक वस्त्र योंही बिना किसी अङ्गके वस्त्र विहीन हुए सतीने बात चीत करते करते इस नश्वर शरीरको अग्निके समर्पण कर दिया। उनके अन्त समयकी यह दो बाणियां अब तक उनकी महिमा का परिचय दे रही हैं,-एक तो सतीके बगीचे में सर्प किसी को नहीं काटेगा और काटेगा तो विष नहीं चढ़ेगा, द्वितीय ठाकुर जामकी सिंहके पुत्र ठाकुर

रघुनाथ सिंहजी को अपने कानकी बाली देकर उन्होंने कहा था, जाओ वत्स ! जाओ ! भारतमें तुम धन धान्यादिसे पूर्ण होकर यशस्वी होगे। उन्हींके आशीर्वादसे सबका साधारण जमींदार बहवारवंश आज ताल्लुकदारोंकी हैसियत रखकर ठाकुर रघुनाथसिंहजीके वंशकी शोभा बढ़ा रहा है ! पाठक ! भारतकी इन सती देवियोंको, अन्तःकरणसे ध्यान कर एक बार बोलो "भारत जननी रूपा ! देवि स्वरूपा ! सती देवि ! स्वाम बन्दे ! बन्दे ! बन्देमातरम !„

पण्डित शिवबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हिवेट रोड लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

[illegible] रत्न २२

बदरुद्दीन तय्यबजी

सन् १९२१ ई०

बदरुद्दीन तय्यबजी।

जस्टिस बदरुद्दीन तय्यबजीकाजन्म ८ अक्टूबर को सन १८४० ई० में हुआ था। आपकी जन्मभूमि खम्भात है। आपके पूर्वज अरबके रहनेवाले थे। मिस्टर बदरुद्दीनके पिता तय्यबजी भाई मियन बम्बई में प्रसिद्ध व्यापारी थे। बालकपन सेही बदरुद्दीन तय्यबजी की बुद्धि बड़ी कुशाग्र थी। अतएव आपने बम्बई के दादा मखार मदरसेमें उर्दू और फारसी भाषा को बड़ी शीघ्रतासे सीख लिया। आगे अंग्रेजी पढ़ने के लिये आपका नाम "एलफिन्सटन-इन्सटीटियूट" में लिखा दिया गया।

अङ्गरेजी भाषामें योग्यता प्राप्त करने पर आपके पिता तय्यबजी भाई मियन साहबने आपको विलायत भेज दिया। उस समय आपकी अवस्था केवल १६ वर्ष की थी। बदरुद्दीन तय्यबजीने विलायत जाकर "न्यूबरी-हाई-पार्क कालिज" में नाम लिखाया। वहां आपने लंदन यूनिवर्सिटी की प्रावेशिक परीक्षा पास की।

इस परीक्षा को पास करनेके पश्चात आप उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके लिये कालिजमें भरती हुए। किन्तु दुःखके साथ लिखना पड़ता है, कि आपकी वह अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई। आप बीमार पड़ गये। लाचार सन १८६४ में आपको विलायतसे बम्बई लौट आना पड़ा।

एक वर्ष यहां रहकर स्वास्थ्य अच्छा होने पर आप फिर विलायत गये। पर डाक्टरोंने कहा,—"कालिजमें पढ़नेसे फिर आपका स्वास्थ्य खराब हो जायगा। विशेषतः आपको आखोंका अधिक पढ़नेसे अधिक अनिष्ट परिणाम होगा।„ डाक्टरों की ऐसी सम्मति होने पर बदरुद्दीन तय्यब जी ने उच्च शिक्षा प्राप्त करनेका विचार त्याग दिया। उपरान्त कानून पढ़नेके लिए आप "मिडिल-टेम्पल„ नामक कानूनके विद्यालयमें भरती हो गये। वहां २ वर्ष पढ़कर आपने बारिस्टरीकी परीक्षा को पास कर लिया।

बारिस्टरी पास कर सन १८६७ के नवम्बर मासमें आप बम्बई वापिस आये। उस समय तक लोग समझ रहे थे, कि बारि-

स्टरी करना यूरोपियन लोगों का ही काम है। देशी बारिस्टरों की लोग कम ही नहीं बल्कि बिलकुल प्रतिष्ठा नहीं करते थे। वही ध्यान देशवासियोंकी बारिस्टरीका बदरुद्दीन तय्यबजींकी ओर रहा। पर आप घबड़ाये नहीं धैर्य और दृढ़ताके साथ काम करते रहे, यहीं क्यों क्रमशः अपने कार्यों द्वारा आपने लोगों पर यह प्रकट करके दिखला दिया कि भारतीय बारिस्टर भी उतनीही बल्कि अधिक योग्यताके साथ बारिस्टरी कर सकते हैं, जैसी योग्यता के साथ यूरोपियन बारिस्टर करते हैं। किसी किसीका कहना है,-"श्रीमान बद-रुद्दीन तय्यबजी बारिस्टर महोदयने अपनी योग्यताके बल देशवासियों पर प्रभाव डाल कर अथवा यों कहिये भारतीय बारिस्टरों की योग्यता पर भारतवासियों का विश्वास दिलाकर भविष्यमें भारतवा-सियोंके लिये बारिस्टरी करने का मार्ग खोल दिया।„

कहावत है,—,एक फौजदारी मुकदमें में बारिस्टर बदरुद्दीन तय्यबजी मुद्दईकी ओरसे बम्बई हाईकोर्टमें वकालत करने

गये। उस मुकद्दमे में आपने बड़ी योग्यता के साथ मुद्दई का पक्ष समर्थन किया। आपकी वहसके जज मिस्टर वेस्ट्राप और जूरी बहुत प्रसन्न हुए। मुद्दई निरपराध साबित हुआ। जज साहबने उसे छोड़ दिया। इस पर न जाने क्यों बम्बई गज़टके सम्पादकने बारिस्टर बदरुद्दीन तय्यबजी की अपने गज़टमें निन्दा छापी, बम्बई गज़टके इस लेखको जस्टिस वेस्ट्रापने पढ़ा संयोगसे कई दिनके बाद जस्टिस वेस्ट्राप, बारिस्टर बदरुद्दीन और बम्बई गज़टके रिपोर्टर यह तीनोंही महाशय इजलासके समय बम्बई हाईकोर्ट में एकत्र मौजूद थे। इस समय जस्टिस वेस्ट्रापने बम्बई गज़ट के रिपोर्टरके सामने बात चलाकर बारिस्टर बदरुद्दीन तय्यबजीसे उन्हें सम्बोधित कर कहा,-"आपको आज यहां देखनेसे मुझे बड़ा आनन्द हुआ। उस रोज़के मुकद्दमे में जो आपने भाषण किया था, उस भाषण को बम्बई गज़टके सम्पादकने खराब बतलाया है। परन्तु उसका यह लिखना गलत है। उसके लिखनेसे शायद आपके काम काजमें कुछ बाधा पड़े अथवा आपको कुछ

नुकसान पहुंचे किन्तु इसका मैं कोई कारण नहीं देखता। इस सम्बन्धमें मैं आपसे कहता हूं कि वह मुकदमा आपने बड़ी योग्यतासे चलाया। यही नहीं वरन जुरीके सामने जो आपने उत्तम भाषण किया उसीसे अभियुक्त निरपराध प्रमाणित हुआ और छोड़ दिया गया।„ जज साहबके शब्दोंको सुनकर गज़टके रिपोर्टर का चेहरा उतर गया और वह अपना सा मुंह लेकर लज्जित होकर चला गया।

कहना नहीं होगा, प्रायः १० वर्ष बदरुद्दीन तय्यबजीने बारिस्टरीके सिवा और कुछ काम नहीं किया। अब समयने पलटा खाया। सन १८७९ में सरकारने मञ्चेस्टरके मालपर कर माफकर देनेका विचार किया। पर इस करके माफ हो जानेसे बम्बईके व्यापारियोंको बड़ा नुकसान होता था। ऐसी अवस्थामें बम्बईके व्यापारियोंने मिल कर वहां एक सभाकी। उस सभाका सभापति बदरुद्दीन तय्यबजी को बनाया। सभापतिकी हैसियतसे आपने बड़ा ही प्रभावशाली व्याख्यान दिया। अवश्यही उस व्याख्यानका फल कुछ नहीं हुआ।

सरकारको जो कुछ करना था, उसने वह कर लिया। किन्तु उस व्याख्यानके प्रभाव से सर्व साधारणमें बदरुद्दीन तय्यबजीका नाम हो गया। देशवासियों को उनकी योग्यता पर अभिमान हुआ और उनको देशवासियोंकी सेवा करनेका चाव बढ़ा। इस समयसे प्रजाके दुःखोंको सरकारके सन्मुख बड़ी योग्यता बुद्धिमत्ता और साहसके साथ ईश्वर पर भरोसा रखकर प्रगट करनेका व्रत आपने धारण किया।

सन १८८२ ई० में बम्बई गवरनर सर जेम्स फरगुसन साहबने बदरुद्दीन तय्यबजी को अपनी कौनसिलका सभासद बनाया। वह समय भी बड़ा नाजुक था। भारतके बड़े लाट लार्ड रिपन महोदयने आत्म-शासन-प्रणालीका अधिकार प्रजाको देने के लिये एक नया प्रस्ताव पास किया। इसके लिये कानून बनानेका मस्विदा बंबई सरकारकी सभामें आया। उस समय बम्बई के गवरनर का सभा में माननीय फीरोज शाह मेहता, तैलङ्ग और बदरुद्दीन तय्यब जी जैसे प्रजाहितैषी गवरनर सभाके सदस्य थे। उन लोगोंने सरकारी मेम्बरोंकी यु-क्तियों में अपने योग्य प्रतिवादोंसे बाधा

डाल कर विशेष तो नहीं किन्तु यथासाध्य अस्थिद्केो ढीक कर पोया । इस मण्डन समर्थन में इहसको योग्यता देखकर बम्बई के गवरनर सरजेम्स फरगूसन साहबने बारिस्टर बदरुद्दीन तय्यबजी की बड़ी प्रशंसा की । बस आजसे सर्व साधारण को विदित हो गया कि बारिस्टर बदरुद्दीन तय्यबजी बड़े भारी वक्ता हैं। उपरान्त सन १८८३ तथा ८४ में वहां जितनी सभाएं हुईं उन सब में बदरुद्दीन तय्यब जोके व्याख्यान हुए । भगवानकी कृपासे आपके जितने व्याख्यान हुए। उन सबमें आपकी तारीफ रही। आगे "फरामजी-कावसजी हाल, में सिविल-सरविस परीक्षा तथा इलबर्ट-बिल विषय पर और बम्बईको एक सभामें लार्ड रिपनके सम्मान विषय पर आपकी सराहनीय वक्तृतायें हुई । सब लोग आपकी अलौकिक बुद्धिमत्ता पर लट्टू हो गये। योंही धीरे धीरे आपने भारत प्रजाका मन मोह लिया । साथ ही देशके बड़े बड़े विद्वान आपका आदर करने लगे।

बदरुद्दीन तय्यबजीने भी देशसेवाका फल अनुभव किया। कांग्रेस सभासे उनकी

पूरी सहानुभूति हुई । कांग्रेसके हर एक काम और प्रस्तावको वह आदरकी दृष्टि से देखने लगे। कांग्रेसके विचारोंका स्थान स्थान में प्रचार करना उन्होंने अपना कर्तव्य समझा। इस सब देशसेवाके परिवर्तन में देशवासियोंने सन १८८९ में मद्रास की कांग्रेस सभाका सभापति निर्वाचित करके सम्मानित किया। सभापतिक आसन पर बैठकर आपने जो व्याख्यान दिया वह बहुत ही मनोहर हुआ। सबने उसे पसन्द किया। देशसेवाके साथ साथ बदरुद्दीन तय्यबजी अपनी निज जातिकी सेवा करने में भी पश्चात पद नहीं थे। उनका कहना है,—"हमारे धर्मबन्धु मुसलमान लोग हर एक बात में सबसे पीछे हैं। उनको हर प्रकारकी सहायता मिलनी चाहिये।" इसके लिये वह हर समय परिश्रम किया करते थे। आपके परिश्रम और प्रयत्नका ही फल है कि 'अञ्जुमन-इसलाम' के द्वारा बहुतसे मुसलमान भाई विद्या पाकर विद्वान हुए हैं। उनके विचारोंका ही फल है, कि आज अनेक मुसलमान भाई वकील बारिस्टर

यवन बी० ए० एम० ए० दिखाई दे रहे हैं। सच तो यह कि बारिस्टर बदरुद्दीन तय्यब जीका विद्यादानकी ओर बड़ा ध्यान रहता था। देशवासी और विशेष कर हमारे मुसलमान बन्धु इस दान और परिश्रमके लिये उनके ऋणी अनन्त काल पर्यन्त रहेंगे।

देशसेवकोंको माननीय बदरुद्दीन तय्यब जीसे एक सबक लेना बहुत उचित है। देशसेवा करते समय उन्होंने देशवासी, निज धर्मके अनुयायी तथा सरकार इन तीनों को ही सन्तुष्ट रखा। उनकी त्रिवर्गीय सहानुभूति और योग्यताके कारण सम्पूर्ण भारतवर्षने, उनके धर्मबन्धु मुसलमानोंने तथा ब्रिटिश सरकारने तीनोंने ही उनका सम्मान किया। भारतवासियोंने उनकी देशसेवासे सन्तुष्ट होकर उन्हें नेशनल कांग्रेस सभाका सभापति बनाया, मुसलमानोंने उनकी जाति सेवासे प्रसन्न हो कर उन्हें अपना सिरताज माना और सरकार ने उनकी न्यायानुमोदित योग्यतासे खुश होकर उन्हें बम्बई हाईकोर्टका जज नियत किया। इस भांति जस्टिस बदरुद्दीन तय्यब

जैसे भारतवासी मुसलमान भाई तथा सरकार यह तीनों ही सन्तुष्ट रहे। तभी कहते हैं, ऐसे योग्य महानुभावके कार्यों को देशसेवकों को अनुकरण करना चाहिये।

पण्डित शिवबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैदरगंज कदीम लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

अवधवासी ग्रन्थमाला रत्न २१

फ़ीरोजशाह मेहता

सन् १९२१ ई०

फीरोजशाह मेहता ।

सर फीरोजशाह मेहताका जन्म सन १८४५ ई० के अगस्त मासको ४ तारीखको बम्बई में हुआ था। आपके पिता बम्बई की प्रसिद्ध व्यापारी कम्पनी 'कामा एण्ड को०, के हिस्सेदार थे। उनको व्यापार करनेके दाँव पेंच खूब मालूम थे। व्यापार शिक्षाके महत्व को वह समझते थे। व्यापार दृष्टिसे उन्होंने इतिहास तथा भूगोल सम्बन्धी कई पुस्तकें लिखी हैं। अतः फीरोजशाह मेहताकी शिक्षाकी ओर आपने खूब ध्यान दिया। इधर इनकी बुद्धि भी बड़ी तीव्र निकली। सोने में सुहागा मिल गया। फल यह हुआ कि आरम्भिक शिक्षा फीरोज शाहने बहुत ही शीघ्र प्राप्त कर ली। आगे सन् १८६१ ई० में जब आपकी अवस्था केवल १६ वर्ष थी तब आपने विश्वविद्यालयकी प्रावेशिक परीक्षा और १८६४ में एलफिंस्टन कालिज से बी० ए० परीक्षा पास करली। बी० ए० के बाद ६ महीने परिश्रम कर आपने एम०

ए० परीक्षा पास की। उपरान्त एलफिंस्टन कालिज के फीरोजशाह मेहता फेलो नियत हुए। कालिजके मुख्य अध्यापक सर अलेकजेण्डर ग्रांट आपसे बहुत खुश थे। उन्होंने इनको पारसी जातिमें प्रथम एम० ए० परीक्षा पास हुआ देखकर विचार किया कि यह यदि विलायत जाकर बारिस्टरी परीक्षा पास करें तो उत्तम हो। अतएव रुस्तमजी जमशेदजी जीजी भाई के 'ट्रेवलिङ्ग फेलोशिप, मिलनेके लिये सिफारिश की। फीरोजशाहके पिता की इच्छा नहीं रहने पर भी उक्त अध्यापक महाशयने आपको विलायत भेजा।

विलायत जाकर मेहता महोदयने ३ वर्ष कानूनका अध्ययन किया। उपरांत सन १८६८ ई० में "लिङ्कन्स-इन, से बारिस्टरी परीक्षा पास की। अनन्तर दादा भाई नौरोजी तथा बाबू उमेशचन्द्र बनरजीकी सहायतासे आपने वहां "लंदन लिटरेरी सोसाइटी, नामकी सभाका स्थापन किया इस सभा में मेहताजीने भारतकी-शिक्षा-पद्धति विषय पर एक निबन्ध पढ़ा। उस निबन्धके भावोंसे

आपकी बुद्धिमत्ता और मार्मिकताका पूरा पूरा पता लगता है। आगे मेहताजी वहाँ से भारत लौट आये। कहते हैं, जिस दिन वह बम्बई पहुंचे उस दिन उनके परम शुभ-चिन्तक अध्यापक सर ए० ग्राट को "फरामजी-कावसजी-इन्स्टीटियूटहाल"में, मानपत्र देनेकी सभा थी। वह विलायतके विश्वविद्यालय में "एडनबरो" के मुख्य अध्यापक नियत हुए थे। अतः वहां जानेके लिये तैयार हो रहे थे। बारिस्टर फीरोज शाह मेहता को यह खबर जहाज पर ही लगी। यह वहांसे सीधे बिना अपने घर गये, उक्त मान सभामें उपस्थित हो गये। ग्राट साहब मेहताजी की यह कृतज्ञता देखकर बड़े सन्तुष्ट हुए।

उपरान्त बम्बईमें फीरोज शाह मेहता बारिस्टरी करने लगे। बारिस्टरी करते समय आपने केवल पेट पालनमेंही ध्यान नहीं रखा किन्तु अपनी जन्म भूमि भारत के हितके लिये यथासाध्य आप सदैव उद्योग करते रहे। सबसे पहले देश हितका काम आपने यह किया कि सन् १८६९में भारतकेप्रसिद्ध देशभक्त वृद्ध पारसी दादा

भाई नौरोजी को आर्थिक सहायता दी। यही क्यों बम्बईके अन्य सेठ साहूकारोंको भी आपने इस पवित्र सहायताके लिये उत्साहित किया और उनसे सहायता दिला कर यशके भागी बने। सन १८६८ ई० में बम्बईके गवरनर सर बाल्टर फियरने बंबई निवासियों को आत्म शासन प्रणालीका अधिकार प्रदान किया। सन १८७० ई० में उक्त म्युनिसपलिटीके कमिश्नर मिस्टर आर्थर क्राफर्डके हृदय में बम्बई नगरको फरांसके पेरिस नगर जैसा सुन्दर बनानेका मनोर्थ हुआ। इस मनोर्थ की सिद्धि में वहांकी म्युनिसिपलिटी का असीम धन खर्च हो गया। म्युनिसिपलिटी करजदार हो गयी। इस कर्जकी शिकायत भारत सरकारके कानों तक पहुंची। उसका फल यह हुआ कि उक्त कमिश्नर साहब अपने पदसे अलग कर दिये गये। अनन्तर 'आत्म-शासन प्रणालीके नियमोंका सुधार विषय पर फीरोजशाह मेहताने 'फरामजी कावसजी इन्स्टीटियूट, में एक अत्युत्तम प्रभावशाली निबन्ध पढ़ा। उस निबन्धमें आपने सिद्ध किया कि ऐसे कानून की देख

मालके लिये एक समिति बनायी जाय और एक एकजीक्यूटिव कमिश्नर नियत किया जाय वही सब काम करे। कई आदमियोंके हाथमें काम देनेसे लोगोंके विचार और मत भिन्न २ होनेके कारण व्यवस्थानुसार ठीक तौर पर काम नहीं होता। उस समय मेहताजीके इन विचारों को लोगोंने हँसी में उड़ाकर इन्हें कमिश्नर क्राफर्ड साहबका पक्षपाती बतलाया। पर आगे सन १८७२ ई० में ठीक उसी शैलीपर सरकारने नवीन म्युनिसिपल ऐक्ट रचकर पास किया। अबतो सरकार तथा प्रजा दोनों पर फीरोज शाह मेहताका अच्छा प्रभाव पड़ा। उपरान्त बहु सदैव आत्म शासन प्रणालीके विषयों पर विचार तथा उसके नियमोंके सुधारों का उपाय सोचते रहे। सन १८७२ तथा ७३ ई० में "टावर-आफ-सायलेन्स-रायट-केस„ नामक फौजदारी मुकद्दमें में आपने वकालत की। इस मुकद्दमेमें आपके कानूनी ज्ञानका लोगों को अच्छा परिचय मिला। अधिक क्यों दूसरे पक्षके बारिस्टर एन्सटे साहब भी इनकी बहस सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और

कहा,——"मेहताजी! आपकी योग्यता को देखकर मैं भविष्यवाणी करता हूँ कि आगे चलकर आपको महान यश तथा लाभ प्राप्त होगा।" इसी भांति फीरोज शाह मेहताने "सूरत रायट केस" का भी काम किया। इन दोनोंके द्वारा आपका नाम बम्बई प्रान्त भरमें प्रसिद्ध हो गया। अब आपकी बारिस्टरी खूब धामसे चलने लगी। विशेष क्या आपको मुकद्दमोंकी अधिकतासे इतनी कम फुरसत रहने लगी कि आपको कितने ही मुकद्दमें वापिस कर देने पड़ते थे। अवश्य ही मुकद्दमे वापिस करनेमें आपको बड़ा कष्ट होता था किन्तु इसके सिवाय और उपाय ही क्या था। बारिस्टरीके अतिरिक्त सरकारी तथा अन्य काम भी आपको करना पड़ते थे। सर्कारी कानून बनाने वाली सभाके आप सदस्य थे। इस लिये प्रायः प्रत्येक मास आपको किसी न किसी सरकारी कानूनका मसविदा देखना पड़ता था और उसपर राय प्रकट करना होती थी।

इतना काम रहते हुए भी आप देश हितकर कार्यों में सदैव ध्यान रखते थे

देशहितके लिये आप अपने निज लाभको परित्याग कर देते थे। अनेक दिन म्यु-निसिपलिटीका कार्य करनेके पश्चात् सन् १८८४ ई० में वहांके कारपोरेशनने आपको सभापतिका आसन प्रदान कर सम्मानित किया। सभापति होकर आपने बड़ी योग्यताके साथ काम किया. बम्बई के 'टाइम्स-आफ-इण्डिया, पत्रने आपकी योग्यताके विषयमें लिखा था,-"विलायती और देशी दोनोंही श्रेणीके लोगोंके विचार से मेहता महोदयने कारपोरेशनके सभा-पतिका जैसा उत्तम काम किया वैसा अन्य किसी सभापतिने नहीं किया। बम्बई निवासियोंकी सेवाके सिवा अन्य देशवा-सियोंकी सेवाके लिये फीरोजशाह मेहताने वहां 'बम्बई प्रेसीडेन्सी ऐसोसियेशन, नाम्नी सभाको श्रीयुत काशीनाथ त्र्यम्बक तैलङ्ग तथा बदरुद्दीनतय्यबजीकी सहायता से स्थापन किया। इस सभा द्वारा 'इलबर्ट-बिल, के समयसे बराबर देशसेवाका कार्य धूम धामसे होता रहा। सन १८८६ ई० में बम्बईके गवरनर लार्डरे महोदयने फीरोज शाह मेहताको बम्बई सरकारकी कानून

बनानेवाली सभाका सभासद बनाया। सभासद रहकर आपने प्रजा पक्षके समर्थन का काम सफलतासे किया।

सन १८८८ ई० में म्युनिसिपल एक्टके परिवर्तन को सिलेक्ट कमिटीके सदस्य रह कर मेहता जीने अधिक परिश्रमके साथ संशोधित कराकर प्रजाके हितकर बनवाया। नेशनल कांग्रेस सभाके आप अनन्य भक्त थे। उनके उपकारोंके परिवर्तनमें सन १८९० ई० के कलकत्ते वाले छठे अधिवेशन में देशवासियोंने नेशनल कांग्रेस सभाका सभापति बनाकर आपको सम्मानित किया। सभापति की हैसियतसे सर फीरोज शाह मेहताने जो व्याख्यान दिया था उसको पढ़नेसे आपकी विद्या, वक्तृत्व शक्ति, आपकी नीति निपुणता तथा दूरदर्शिताका अनुपम परिचय मिलता है।

सन १८९२ ई० में सरकारी कानूनी कौन्सिल में प्रजा द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियोंके भी रहनेका कानून पास हुआ। फीरोजशाह मेहता उक्त कानूनके अनुसार बम्बई कारपोरेशनकी ओरसे बम्बईके उक्त कौन्सिलके सभासद निर्वाचित हुए।

उस सभामें रहकर भी आपने सदैव प्रजा-हितका साधन किया। इस प्रकार कानून सभामें २१ वर्ष तक आप काम करते रहे। उपरान्त मेहताजी भारत सरकारकी कौन्सिल में बम्बई प्रान्त निवासियोंकी ओरसे दोबार सभासद निर्वाचित हुए। इस समय अन्य देशहितकर कार्योंके साथ २ एक कार्य आपने बड़े महत्व का किया। लाट सभामें देशके नवयुवक गोपालकृष्ण गोखलेका प्रवेश करनेका मौका देनेके निमित्त आप उस सभासे इस्तीफा देकर अलग हो गये। आपके इस स्वार्थ त्यागके लिये देशवासियोंने आपकी बड़ी प्रशंसा की। भारत सरकारकी कौंसिल में रहते समय पुलिस ऐक्टके सुधार सम्बन्धमें जो विचार आपने प्रकट किये वह बड़े उपयोगी थे। देशसेवाके साथ २ आपने जो सरकार की सेवाकी उसके लिये सरकारने प्रसन्न होकर आपको के० सी० आई० ई० उपाधि से सम्मानित किया। इस प्रकार सर उपाधि प्राप्त सर फीरोजशाह मेहताने "सरकारके उचित विचारों को प्रजापर प्रकट करके उसे सन्तुष्ट करना और प्रजाके दुःखोंको

सरकार को बतलाकर प्रजाके सुखकी कामना करना„ अपने जीवनका लक्ष्य रक्खा। योंही इस पुण्य कार्यके फल अक्षय यश प्राप्त कर आप इस असार संसारसे चल दिये।

पण्डित शिवबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस [illegible] लखनऊ
मुद्रित और प्रकाशित

अवधवासी ग्रन्थमाला रत्न ३३

मिस्टर ए० ओ० ह्यूम

सन् १९१४ ई०

(काङ्ग्रेसके जन्मदाता)

मिस्टर ए० ओ० ह्यूम !

इण्डियन नेशनल कांग्रेस अर्थात भारतीय जातीय सभाके जन्मदाता मिष्टर ए० ओ० ह्यूमका जन्म सन १८२९ ई० में हुआ था। लड़कपन में इनका स्वभाव बड़ा चंचल था। अतः १२ वर्षकी उमर में इन्होंने जहाज पर नौकरी करली। पर इन के पिता मि० जोजेफ ह्यूमने इन्हें नौकरीसे हटाकर विद्याध्ययन में लगाया। अध्ययन में इन्होंने खूब चमत्कार दिखाया। थोड़े ही समय में विद्या पढ़ ली। उपरान्त सन १८४९ में आप कलकत्ते आये। वह समय ईष्ट-इण्डियन-कम्पनी के शासन कालका था। ह्यूम साहब कम्पनी के यहां नौकर हो गये। कम्पनी के नौकर होकर कुछ काल तक आप कलकत्ते में रहे, पश्चात सन १८५६ ई० में कम्पनीने आपको कलक्टर तथा मजिस्टर बनाकर यक्त प्रदेश के इटावा शहर को भेज दिया। उक्त दोनों पदोंका कार्य ह्यूम साहबने बड़ी योग्यता

के साथ किया। वहां की प्रजाको आपने उनके हितकर कार्य करके भली भांति सुग्ध कर लिया। इसी समय उत्तर भारत में सिपाही विद्रोह उठ खड़ा हुआ सरकारी खजाना लूटा लेनेके अभियोग में विद्रो- हियोंने ह्यू म साहबको मार डालनेका उद्योग किया। पर ऊपर कह चुके हैं, कि ह्यू म साहब प्रजा हित करनेके कारण प्रजा प्रिय हो रहे थे। अतएव विद्रोहियोंके हजार चेष्टा करने पर भी यहाँकी प्रजाने अपने प्राणों पर खेलकर विद्रोहियोंके हाथ से पड़नेसे ह्यू म साहबको बचाया। आगे गयाद्दीन सिपाही की मारफत उन्हें इटावे से आगरे पहुँचानेका प्रबन्ध किया। गया- द्दीन बड़ी चतुराईसे एक साथीके साथ ह्यू म साहबको मुसलमान लिवास में अपने और अपने साथीके मध्य में रखकर कुशल पूर्वक आगरे ले गया। तब ह्यू म साहबको इस संकटसे छुटकारा मिला। साथही उन्हें मालूम हुआ, कि भारतवासियोंके साथ उपकार करनेसे उसका क्या फल होता है। तभी वह भारतवासियोंके अन्तः करणसे प्रेमी हो गये।

इटावेसे विद्रोहीगण जब लूटपाट कर दिल्ली चले गये तब कुछ दिनोंके लिये शांति हो गयी। शान्ति विराजने पर फिर ह्यू म साहब इटावा में आकर रहने लगे। किन्तु थोड़े ही दिनों बाद फिर विद्रोह उठ खड़ा हुआ। जबसे लगभग ३० अङ्गरेज स्त्री पुरुष और बालकोंको ह्यू म साहबने राजा लक्ष्मण सिंह और कुँवर जोर सिंहके साथ आगरे भेज दिया। उनके कुशल पूर्वक वहाँ पहुँच जाने पर ह्यू म साहबको बड़ा आनंद हुआ। इस भांति बाल बच्चोंके जाने तब कर आगरे पहुँच जाने पर वह आप खुद भी इटावेसे आगरे चले गये। उपरान्त गदर शान्त होने पर ह्यू म साहब फिर इटावा आये। उस समय इटावा जिले में ५ तहसीलें थीं। पांचों तहसीलोंमें विश्वास पात्र आदमियोंको नियत कर ह्यू म साहब ने उक्त जिलेका बहुत ही सुन्दर प्रबन्ध किया। हिन्दुस्थानियोंके साथ मिलकर उनको संतुष्ट रखकर ह्यू म साहबने जो प्रबन्ध किया उसका फल यह हुआ कि गदर के समय विद्रोहियोंके हाथ में इटावा जिले का एक पैसा भी नहीं गया। साथ ही उप-

कार तथा प्रजा दोनों में उनकी ख्याति हुई। सब भारतवासी उन्हें अपने कुटुम्बी से भी अधिक प्यारा समझने लगे।

विद्रोह दमनके लिये ह्यूम साहबने सरकारसे ५०० पैदल, ३५० सवार और ८ तोपोंकी मंजूरी ली। यह सब फौज और तोपें लेकर ह्यूम साहबने हरचन्द्रपुरके पास विद्रोहियोंको दमन किया। उनका दल तितर बितर हो गया। इटावा जिला पुनः शांति आल काल बच गया। गदर शान्तके २ वर्ष बाद सन १८६१ ई० में ह्यूम साहब छुट्टी लेकर विलायत गये। वहां अच्छी २ जगहोंके मिलने पर भी आपने भारतवर्षसे प्रेम नहीं छोड़ा। निदान छुट्टी खतम होने पर आप फिर भारतवर्ष आये। यहां आने के दो वर्ष बाद ह्यूम साहब निमक मह-सूल महकमें के कमिश्नर हुए। इस पद पर रह कर आपने नमक महकमेंका बहुत कुछ सुधार किया। आपकी इस प्रकारकी यो-ग्यता तथा कार्यपटुता देखकर उस समयके लार्ड मिण्टोंने आपको जिराअत महकमें का डाइरक्टर नियत किया परन्तु सर्वंकी लड़ीके कारण कुछ दिनोंके बाद यह पद-

कना तोड़ा दिया गया। उसी समय विलायती सूती कपड़े पर महसूल बन्द करने का विचार भारत सरकारके यहां उपस्थित किया गया। ह्यूम साहबने सरकारके इस विचारकी बड़ी उक्ति युक्तिके साथ खण्डन किया। विलायती सरकार उनके इस खंडन से कुछ असन्तुष्ट हुई। पर परम योग्य लार्ड रिपनने ह्यूम साहबकी योग्यता, उनके अनुभव तथा उनकी सरकारके प्रति उपकारिताका परिचय देकर सरकारके क्रोधका समाधान किया। आगे लार्ड रिपन ने ह्यूम साहब को एक प्रान्तका छोटा लाट बनाना चाहा। पर ह्यूम साहबने लाटगीरी पदका गौरव प्राप्त करने से अस्वीकार कर दिया।

इस गौरवान्वित पदको नहीं स्वीकार करनेके कारणमें अनेक लोगोंका कहना है, कि मालूम होता है, कि ह्यूम साहबको अपने शेष जीवनका समय भारत वासियों की सेवा में व्यय करना मंजूर था इसीसे इस सम्मानको अस्वीकार कर उन्होंने इस महान स्वार्थ त्यागका परिचय दिया था।

सन १८८२में पेनशन लेकर बड़ सरकारी

नौकरीसे अलग हो गये। तबसे बराबर जीवन पर्यन्त वह भारत हित साधन में उद्योग करते रहे। आपके उद्योग एवम् अनुग्रहसे "इण्डियन नेशनल कांग्रेस, सभा की यहां सन १८८५ ई० में स्थापना हुई। इसीसे आप "भारतीय राष्ट्रीय-सभा," के जन्मदाता अर्थात्" इण्डियन-नेशनल कांग्रेसके पिता," नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। अनेक संकुचित हृदय अङ्गरेज भारत हितैषी मिस्टर ह्यूमसे उनके इन कार्योंके करनेके कारण अप्रसन्न रहते थे। पर उन्होंने ऐसे क्षुद्र हृदयवाले अपने भाइयोंकी परवाह नहीं करके जीवन भर निर्भय होकर भारत की भलाईका कार्य किया यहां क्यों सच पूछो तो यह कहना होगा मिस्टर ह्यूम इण्डियन नेशनलकांगरेसके जीवित समय में प्राण थे और अब उनकी आत्मा और कांगरेसकी आत्मा एक हो रही है। भारतवासी उन्हें अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यारा समझते हैं।

भारतवासी जानते हैं, विलायत में इसी कांङ्ग्रेस सभाकी एक शाखा है। उस शाखा द्वारा इण्डिया, नामक एक अङ्गरेजी

भाषा में साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया जाता था। विलायत में रह कर ह्यू म साहब इसी शाखा सभा तथा पत्र द्वारा विलायती सरकारको भारतके कल्याणकी बातें सुझाया करते थे प्रायः ८० वर्ष की अवस्था तक जीवित रहकर उन्होंने इसी भांति भारतहितके लिये परिश्रम किया। भारतीय इण्डियन नेशनल कांग्रेस सभाके यह महामन्त्री थे। भारतवासी उनके इन उपकारोंको कभी भूल नहीं सकते। भूलना कैसा, भारतहितैषी निज जननीके सुपूत परम उदार हृदय मिस्टर ह्यू मको भारत-निवासी अपना परम शुभचिन्तक भारतका लाड़िला अपने हृदयके अन्तः पटलमें नि-वास देकर बड़े गर्वके साथ कहते है, हमारे ह्यू म हमारे भारतके दुःखकी वेदना से पीड़ित होनेवाले महामहिम ह्यू म, कांग्रेस के पिता ह्यू म, साहबोंके साहब, हमारे ह्यू म साहब है।

ह्यू म साहबके नाम पर इटावे में एक ह्यू मगंज तथा एक ह्यू म हाई स्कूल स्था-पित है। स्कूलके मध्य एक विलक्षण हाल बनी है। निराधार बिना किसी लकड़ी

अथवा पत्थरके सहारे बने डीघ्रे बोझ उठती हुई देख कर बड़े बड़े इञ्जीनियर चकित होते हैं। अधिक क्यों एक इञ्जीनियरने उसे मजबूत करनेके लिए दो खम्भे बनवा दिये थे ह्यूम साहब ने उन खम्भों को हटवाकर कहा, "यह डाट स्वयम ही बड़ी मजबूत है। इसके खम्भों की जरूरत नहीं है,, आपकी बनवाई हुई इटावेके तहसील की इमारत भी देखने योग्य है। उनकी इस शिल्प चातुरी को समझ कर लोग बड़े प्रसन्न हुए। इसी भाँति ह्यूम साहब की योग्यता, अनुभव, दूरदर्शिता और भारतकी भावी दशाका परिचय उनके कार्य एवम व्यवहारसे अनेक प्रकार मिला है। इटावे के एक ठाकुर साहबसे आपने एक बार कहा,—था "ह्यूम गंज में आप कुछ दूकाने बनवा दीजिये। उनसे आप को लाभ रहेगा।,, ठाकुर साहबने उत्तर दिया,—हम बनिया नहीं हैं हम जमींदार एवम सिपाही हैं। हमारे वंशधर बनियाई नहीं कर सकेंगे।,, ह्यूम साहबने उन्हें पुनः समझाकर कहा—"ठाकुर साहब! आप भूलते हैं। आपके कोठरी

सिपाहीगीरी और साधारण जमीन्दारको आगे चलकर कोई नहीं पूँछेगा जो लोग विद्या पढ़कर व्यवसाय करेंगे वही सुखी रहेंगे !,, ह्यूम साहबकी वही बातें अब सत्य मालूम हुई है। उन्होंने उस निश्छल होकर भारतवासियोंको इस प्रकार भविष्य के लिए सचेत होनेका उपदेश दिया था, तभी आज भारतवासी उन्हें अपना जातीय सभा काँगरेसका "पिता ! पिता !, कहकर पुकार रहे हैं सत्य कहने में डर क्या, यदि भारतवर्ष को सच्मुच हीअङ्गरेज जाति अपना बनाना चाहे तो वह भारत प्यारे ह्यूम साहबका सन्मान करें। ह्यूम साहब के विचारोंको कार्य में परिणत करें । फिर देखें, भारतवर्ष माताकी कमरी होकर अङ्गरेजोंके तन पर कैसे लिपटता है। झूठ कहना पाप है, सच तो यह है कि मिस्टर ह्यूम जैसे योग्य राज कर्मचारियोंने ही भारतवर्ष में अङ्गरेजी राज्यकी नीव को दृढ़कर जमाया है और भविष्य में ऐसेही राज कर्मचारियों द्वारा इसदृढ़ नीवके सुदृढ़ होती रहनेकी आशा है। भगवान मिस्टर ह्यूमकी इच्छाओंको पूर्ति करें, उनके

उद्देश्य की सिद्धि दें यही हमारी उनसे प्रार्थना है।

पण्डित शिवबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
भगवती-प्रेस हैवलॉक रोड लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

अवधवासी ग्रन्थमाला रत्न २१

श्रीमती एनीबेसण्ट

सन् १९२१ ई०

श्रीमती एनीबेसण्ट

श्रीमती एनी बेसण्टका जन्म सन १८४७ ई० के अक्टूबर मासकी तारीख १को लन्दन नगर में ६ बजे सायंकाल हुआ था। इनकी माता आयरलैंडके वंशकी थी। उसी वंश में फ्रान्सके ७ राजा हुए थे। पिता केवल आयरलैंडीय माताके उदरसे थे। इस हिसाबसे एनी बेसण्ट तीन चौथाई आयरलैंड की हुईं। सन १८५२ में ५ वीं अक्तूबर को आपके पिताका शरीरान्त हो गया। श्रीमतीके पिताने जो सम्पत्ति छोड़ी थी, वह इतनी कम थी कि उसके सहारे इनकी माँ इन्हें तथा इनके भाईको उच्च शिक्षा नहीं दे सकती थीं। इसी लिये उन्हें दूसरा अवलम्ब लेना पड़ा। संयोगसे एक धनवान लड़केके निरीक्षणका भार इन्हें मिल गया। उसीकी आयसे वह निर्वाह करने लगीं। एनी बेसण्टने उसी अवस्था में कवि मिल्टन के "पैराडाइज लास्ट" ग्रन्थका अध्ययन किया। आगे मिस मेरियट एक दिन इनकी मांसे भेट करने आई।

उस समय बेसण्टकी बातचीतसे प्रसन्न होकर उन्होंने अपनी भतीजीके साथ इन्हें भी पढ़ानेकी इच्छा प्रकट की । शिक्षाका और कोई उपाय न देख अपनी प्यारी पुत्री बेसण्टको माने मिस मेरियटके साथ जानेकी आज्ञा दे दी । मिस मेरियटको छोटे २ बच्चोंको शिक्षा देनेका चाव था। वह बच्चोंको शिक्षा देकर संसार में प्रवेश करने योग्य बना देती थीं। इस भांति उन के द्वारा अनेक निर्धन, प्रतिष्ठित माताओं का दुःख दूर होता था । वह प्रथम व्याकरण नहीं पढ़ा कर बच्चोंसे पहले लेख लिखाया करती थीं। उनसे कहती थीं, कि जो कुछ तुमने देखा सुना है, वह लिख लाओ। इस शैलीकी शिक्षासे वह बालकों को स्वयम् सोचना सिखला देती थीं। एनी बेसण्ट की कल्पनाशक्ति बचपनसे ही प्रबल थी । अब मिस साहिबा की शिक्षा पाकर इनकी वह शक्ति और भी अधिक बढ़ गई। इस प्रकार ज्यों २ श्रीमती बड़ी होती गयीं त्यों त्यों मिल्टनका नरक और स्वर्ग तथा उनके अनुयायियोंका चित्र इनकी आंखोंके सामने मूर्तिमान जैसे

दिखाई देने लगा । इनके हृदय में धार्मिक कथाओंका प्रेम दिन पर दिन बढ़ने लगा । धार्मिक वीरोंके चरित्र इन पर अधिक प्रभाव डालने लगे । वह रातमें दिन में घण्टों स्वप्नों में मग्न होने लगीं । यहां तक कि कभी २ इन्हें यह मालूम होने लगा कि रोमके न्यायाध्यक्षोंके सामने मैं खड़ी हूँ और मुझपर दोष लगाये जा रहे हैं । कभी इन्हें मालूम होता कि सिंहके सामने मैं फेंकी गयी और कभी यह जान पड़ता कि लोहेके सीकचों पर मैं जलाई गई । एक दिन उन्हें मालूम हुआ कि एक नवीन धर्मके प्रचारार्थ मैं बहुतसे श्रोताओंके सम्मुख खड़ी होकर व्याख्यान दे रही हूँ । लोग मेरी ओर आते जाते हैं और मैं स्वयम एक बहुत बड़ी धार्मिक नेतृ हो गयी हूँ सन १८६१ में यह मिस मैरियट के साथ विदेश यात्राको गयीं । १८६२ में पेरिसके एक गिरजा घरमें एक पादरी आये । उनके द्वारा इन्होंने अपना "स्थिरी कृत, संस्कार करना निश्चित किया । उसकी तैयारी के लिये यह लम्बी चौड़ी प्रार्थनाएं करती थीं । इनके महाजीवसे ७ दान

पानेकी आशा थी। इनके हृदयमें आभ्यान्त
रिक आन्दोलन हो रहा था। अतएव
संस्कार होनेके समय जब पादरी साहब
ने इनके सिरपर हाथ रखा तो इन्हें मालूम
हुआ कि स्वयम महाशीव इनको छू रहे
हैं। आगे उमरके साथ २ इनकी धार्मिक
श्रद्धा बढ़ती गयी। अनन्तर १८६२ में
मिसमेरियटने कहा,—"बेसण्ट! अब तुम
बड़ी हुई हो। अपने भरोसे पर काम
करो। हमको जो शिक्षा देना थी वह हम
दे चुकीं। सर्वदा हमारी सहायता नहीं
चाहो। सन १८६३ में श्रीमती बेसण्ट अपने
घर 'हैरो, चली आईं। साढ़े १६ वर्षकी अ-
वस्थामें इनको अपने समय पर पूरा स्वा-
तन्त्र्य प्राप्त हो गया। सन १८६६ के ईस्टर
में कलैफम जिलेके एक गिरजा घर में इनसे
अपने भावी पति श्रीमान बेसण्टसे प्रथम
भेंट हुई। वह कैम्ब्रिज विश्व-विद्यालय
में उच्च शिक्षा प्राप्त उसी गिरजा घरके
पादरी थे। एक दिन संध्या समय रोमन-
कैथोलिक रीत्यानुसार ईसाके अन्तिम
दिनों की घटनाओं पर श्रीमती विचार
कर रही थीं। उन घटनाओं को समझने

केलिये ईसाके चारो शिष्योंके कथनानुसार उन्होंने एक लेख बनाया था। उसको देखने से इनके हृदयमें शङ्काएं उत्पन्न हुईं। कारण उनमें परस्पर विरोध था। अतएव परम धार्मिक होनेपर भी इनके हृदय में इन शंकाओंके दूर करनेकी प्रबल इच्छा हुई। उपरान्त १८६६ मेंएक सप्ताह महाशय बेसण्टके साथ इनका रहना हुआ। इस समय विवाह की बातचीत हुई। १८६७ में उनके साथ इनका विवाह हो गया। १८६९ के जनवरी मास में श्रीमतीके एक पुत्र हुआ। २ वर्ष बाद एक कन्या हुई। सन १८७१ में,इनके दोनों बच्चे तथा यह खुद बीमार होगयीं। इस क्लेशने इन्हें नास्तिक बना दिया। एक दिन इनके पतिसे इनका झगड़ा हुआ। वह घरसे चल दिये। यह आत्मघात करनेको मुस्तैद हुईं। पीछे आत्महत्या को पाप समझ संभल गईं। अनन्तर पूर्वोक्त धार्मिक शङ्काओं की निवृत्तिके लिए पादरी प्यूसी की सेवा में उपस्थित हुईं। उन्होंने विश्वासके अति- रिक्त शंका समाधान का कोई उपाय नहीं बतलाया। १८७२ में स्काट साहब और

उनकी धर्म-पत्नीसे एनी वेसण्टका भेट हुई। स्काट साहब १ मासिकपत्र निकालते थे। एनी वेसण्टका पहला निबन्ध 'क्राइष्ट के देवत्व सन्देह, पर यहीं लिखा गया। कैथोलिक धर्मसे अब एनी वेसण्टका विश्वास जाता रहा। अतएव लन्दनसे लौटकर रविवारको गिरजेकी प्रार्थना में वह शरीक नहीं हुई। १८७२ में गिरजा घरके चबूतरे पर खड़े होकर इन्होंने एक व्याख्यान में अपने मनोभावोंको प्रकट किया। उक्त दोनोंही समाचारोंको सुन कर श्रीमान वेसण्टने श्रीमतीसे गिरजाघर के नियमोंको सर्वथा पालन करनेकी जिद् किया। लाचार श्रीमती सन १८७३ में कानून द्वारा कछ आर्थिक प्राप्त कर निज पतिसे अलग हो गयीं। उपरान्त दाईके घर रहते समय एक धनीके बच्चोंके निरी-क्षणको काम इन्हें मिला। इसीसे इनका तथा इनकी कन्याका निर्वाह होता रहा। आगे माताकी बीमारीकी खबर पाकर यह लन्दन दौरी गयीं। पर अधिक सेवा करनेपर भी वह बच नहीं सकीं। ईश्वरके अस्तित्वमें सन्देह विषयपर जब यह स्काट

साहबकी आज्ञासे लेख लिख रही थीं तभी चार्ल्स ब्रेडलासे इनकी भेंट हुई। उस समय जानब्राइटके अतिरिक्त अंग्रेजों में वक्तृता देनेवाला ब्रेडलासे बढ़कर दूसरा कोई नहीं था। उनके 'नेशनल रिफार्मर' पत्रको मोल लेकर इन्होंने पढ़ा। १८७० में उनके समाजकी यह सदस्य होगयीं। यह अपना लिखा निबन्ध लेकर एक दिन ब्रेडलाके पास गयीं। उन्होंने निबन्ध देखकर कहा, आपने बिना जाने ही नास्तिकता ग्रहण कर ली है। तदुपरान्त मिस्टर ब्रेडला और एनीबेसण्टकी मित्रता आजीवन बनी रही। ब्रेडला साहब बहुत बातों में इनके शिक्षक रहे। राजनैतिक विषय में श्रीमती ने उनसे बहुत कुछ सीखा। सन १८७४ में मिस्टर ब्रेडलाके पारलामेण्ट में सदस्य चुनेजाने के लिये एनी बेसण्टने राजनैतिक आन्दोलन बड़ी धूमसे किया। उसमें इनके उदार ख्यालोंकी हाक जम गयी। नेशनल सरकुलर सोसाइटीके उपसभापति तथा नेशनल रिफार्मरकी उपसम्पादिका हो कर यह लन्दन में काम किया करती थीं। १८७७ में इन पर एक मुकद्दमा चलाया

गया । अमरीकाके डाक्टर नोल्टनने एक पुस्तिका प्रकाशित की थी । उसमें उन्होंने लिखा था दरिद्रताके दुःखसे बचनेका एक मात्र उपाय सन्तान उत्पत्ति को कम करना है । इसमें उसका उपाय भी लिखा था । सरकार द्वारा उसकी बिक्री रोके जानेपर वेसण्ट तथा ब्रेडलाने उन पुस्तिकाओंको खुद बेचना आरम्भ किया । यह लोग जन संख्याके प्रश्न पर सार्वजनिक विचार करने के अधिकार को दृढ़ किया चाहते थे । इन्होंने पुलिस को खबर दी कि अमुक स्थान में हम उक्त पुस्तिका बेचेंगे । फिर क्या था यह लोग पकड़े गये । मुकदमा चला । अन्तमें सौ पौण्डकी जमानत पर छूट गये । अब श्रीमतीने जन संख्याके नियम नामसे एक पेम्फलट छापा उसको नोल्टन पुस्तिकाके साथ बेचना आरम्भ किया साथही जो पुस्तिकाएं पुलिसने मुकदमा करके छीन ली गयीं थीं, उन पर "पुलिससे छीनी हुई" पुस्तिकाएं छापकर बेचना आरम्भ किया । अब इनसे कहा गया तुम्हारे ऊपर कोई मुकदमा न चलाया जायगा । तब इन्होंने उनका छापना बन्द

कर दिया । १८७८ में कन्याको धार्मिक शिक्षाके विमुख रखनेके अभियोग में अदालतके द्वारा श्रीमतीसे इनकी कन्या अलग कर ली गई । इनके घरसे इनके पतिकी आज्ञा पाकर लोग इनकी कन्याको रोती पीटती जबरदस्ती उठा ले गए । आगे बड़े होनेपर कन्यापुत्र दोनोंही इनके पास फिर चले आये । १८८३ में अवर-कारनर नामका नया पत्र इन्होंने चलाया । फिर १८८२ तक यह मजूरोंकी शिक्षा रक्षा कार्य में लगी रही । सन १८८६ में मैडम ब्लेवेटस्की की 'गुप्त शिक्षा, पुस्तककी समालोचना करने के लिए स्टेड साहबने श्रीमतीको दिया । आगे मैडम ब्लेवेटस्की की भौतिक विषयके घटनाओंकी खोज करनेवाली रिपोर्टको इन्होंने उनके कहनेसे पढ़ा । तब इनकी शंका निवृत्त हुई । यह उनकी शिष्य हो गयीं । सन १८८९ में श्रीमतीने 'नेशनल रिफार्मर, में गुप्त शिक्षा की समालोचनाके साथ २ अपने थियासोफिस्ट होनेकी सूचना संसार को दी । तबसे यह थियासोफीकी सेवा बराबर कर रही हैं । १८९३ में यह भारतवर्ष आईं । यहां बनारस

आकर थियसोफिस्टोंकी सभा में योग प्रदान कर समय पाकर हिन्दू कालिजको स्थापित किया। सन १९१५ में यह कालिज हिन्दू विश्व-विद्यालय के अन्तर्भूक्त कर दिया गया। तबसे श्रीमती भारतवासियों को स्वराज्य प्राप्त हो इसका उद्योग करने लगीं। होमरूल लीग सम्बन्धी आपका उद्योग धूमसे चला।

आगे अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलनके समय, आप भारतवासियोंका साथ नहीं दे सकीं। अतः देशवासियोंके श्रद्धा भाजन नहीं रहीं।

पंडित गिरजाबिहारी लाल बाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैदरगंज कदीम लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

[illegible] ग्रन्थमाला रत्न २६

परमहंस दुर्गादत्तजी ।

सन् १९२१ ई०

परमहंस दुर्गादत्तजी।

बिहार प्रान्त अन्तर्गत आजमगढ़ जिले में अन्तरवली एक ग्राम है। विक्रम सम्वत् १८६७ में उक्त ग्राममें श्रीसद्योगिराज विप्रराजेन्द्र स्वामी जीका जन्म हुआ था। आपके पिता पितामह आदि शैव, शाक्त सम्प्रदायी अर्थात् शास्त्राचार ब्राह्मण थे। उन्होंने अपनी परिपाटीके अनुकूल आपका नाम दुर्गादत्त रखा। उपरान्त जन्म नाम विप्रराज पड़ा।

दुर्गादत्त जीको पांच वर्षकी अवस्था में अक्षरारम्भ कराया गया, आठ वर्षकी अवस्था में उनका यज्ञोपवीत हुआ और नव वर्षकी अवस्था में विवाह और दुरागमन कर दिया गया। यह सब हुआ किन्तु दुर्गादत्त जीकी विद्याध्ययन की ओर अगाध अभिरुचि बनी रही। उन्होंने पूर्वोक्त सब कुछ हो जाने पर घरका मोह एकदम छोड़कर विद्योपार्जनके निमित्त प्रस्थान किया।

प्रथम बलिया जिलान्तर्गत भृगुक्षेत्र में

जाकर प्रसिद्ध विद्वान श्रीतारकेश्वर स्वामी जीसे कुछ काल पर्यन्त अध्ययन किया। तदनन्तर काशीके परम प्रसिद्ध श्री ५ राम निरंजन स्वामी जीके निकट दर्शन एवम् उपनिषदादि ग्रन्थों का आरम्भ किया। इस प्रकार सकल ग्रन्थोंमें व्युत्पत्ति प्राप्त कर पं० दुर्गादत्तजी सम्वत १८७६ में शास्त्रार्थ के निमित्त भ्रमण करनेको निकले। मिथिला नदिया, शान्तिपुर आदि स्थानोंमें शास्त्रार्थ करते हुए आप विहार प्रान्तके डुमरांव राज्य पधारे। डुमरांव में अच्छा शास्त्रार्थ हुआ। उससे वहांके महाराज प्रसन्न हुए। अतः कुछ समय तक डुमरांव में रहे।

डुमरांवसे चलकर पं० दुर्गादत्तजी गया जी गये। वहां पिण्डदान किया। उपरांत दुबारी नामक ग्राममें एक पाठशाला स्थापित की। उक्त पाठशालामें अनेक विद्यार्थी आपके निकट आकर विद्योपार्जन करने लगे। वहां पं० जी पांच वर्ष पर्यन्त विद्यार्थियोंको शिक्षा प्रदान करते रहे। तद्पश्चात डुमरांवके महाराज महेश्वर बख्श जीने पुनः डुमरांव पधारनेके निमित्त आपसे अनुरोध किया। महाराजके विशेष आग्रह करने पर पं० जी दुबारीसे डुमरांव पधारे।

डुमरांव में कई वर्ष विद्यार्थी पं० जीकी सेवा में उपस्थित होकर विद्याध्ययन करने लगे। डुमरांवसे आप पुनः बलिया जिला चले गये। वहां शिवरामपुर ग्राम में मकान बनवाकर रहने लगे। अपनी पूज्य माता और स्त्रीको भी पं०जीने वहीं बुला लिया।

वहां रहते रहते पं० जीके २ पुत्र और १ पुत्री उत्पन्न हुई। सन्तान होने पर पं० कुमारदत्त जीने विचार किया कि विद्याध्ययनके पश्चात विद्यादान और तत्पश्चात योगाभ्यास करना गुरुवाक्य है। उसीके अनुसार योगाभ्यास करनेकी अब आपको अभिलाषा हुई। किन्तु माता, पिता और गुरुके जीवित समय उनकी सेवाके अतिरिक्त अन्य कोई धर्म कार्य करना श्रेष्ठ नहीं कहा गया। उनकी सेवाही परम धर्म समझा गया है। पंडित जीकी माताजी जीवित थीं। उधर योगाभ्यास करनेकी भी उनकी प्रबल अभिलाषा थी। अतः उनकी सेवा का प्रबन्ध करके उनकी आज्ञा प्राप्त कर आपने अपना मनोर्थ सिद्ध करना चाहा। माता तथा अपने परिवारके भरण पोषण का भार उठानेके निमित्त आपने डुमरांव के महाराज बहादुरको यह श्लोक लिख

भेजा,—"करिष्यामि महाराज गुरुवाक्य प्रमाणतः। करिष्यामि महायोगं व्रत द्वादश वार्षिकम्।,, महाराजने इसके उत्तरमें लिखा "भगवन! यदि आप योगाभ्यास करना चाहते हैं तो कीजिये, मैं आपके परिवारके पालन पोषणका भार अपने सिर पर लेता हूँ। किन्तु मेरी इतनी प्रार्थना है कि आप डुमरांव अथवा शिवरामपुरमें ही योगाभ्यास करें।,, यह उत्तर पाकर पंडितजी प्रसन्न हो गये।

अब आपनें माता जी के चरणों में पड़ कर उनसे अपनी अभिलाषा पूर्ण कर पाने के लिये प्रार्थना की। कहा,—"माता! मैं योगाभ्यास किया चाहता हूँ। आप प्रसन्न होकर मुझे योगाभ्यास करनेकी आज्ञा दें।,, माताने कहा,—"प्रियपुत्र! तुम्हारे सरीखे सुयोग्यपुत्र पाकर मैं धन्य हुई। मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ। किन्तु निर्जन बन में जाकर नहीं घर पर एकान्त स्थान में बैठ कर योगाभ्यास करना।,, पं० जीने वैसाही किया। घरकी एक कोठरी में योगाभ्यास का प्रबन्ध कर धर्मसेतु नामक एक शिष्यको दरवाजे पर बैठा दिया और उसे

यह आज्ञा दी,-'चाहे कोई चक्रवर्ती महाराज भी आवें तो मुझे न जगाना।,,

इस भांति पण्डितजी योगाभ्यास करने को बैठ गये। क्रमशः इनका योगमें अभ्यास बढ़ने लगा। पहले २ तीन तीन महीने की समाधि लगने लगी। अधिक क्यों बारहवें वर्षकी समाधि उनकी षण्मासकी हुई थी। बारहवें वर्ष जब वह योगको पूर्ण कियाकर निकले तो शरीर सूखकर लकड़ी के जैसा हो गया था, सिरकी जटा लटक कर धरती पर आ लगी थी, जिसके नखों को दीमकने खा लिया था, उन्हें देख उस समय कोई जीवित नहीं कहता था। जो हो, पण्डित दुर्गादत्तजी अपना योगाभ्यास पूर्ण कर बाहर निकले। दर्शकों की भीड़ लगने लगी। पर इनका शरीर अत्यन्त दुर्बल था। अतः इन्होंने कायाकल्प किया संसारकी इनपर भक्ति बढ़ी। अब सब लोग इनको परमहंस कह कर बड़ी श्रद्धासे दर्शन पूजन करने लगे।

परमहंस जीने विक्रम सम्वत १८९२ में योगाभ्यास करना आरम्भ किया था और १२ वर्ष में सम्वत १९०४ में उसे समाप्त किया। योग समाप्त करनेके पश्चात कुछ

काल आप इधर उधर परिभ्रमण करते रहे। आगे विक्रम सम्वत १९१४ में सिपाही विद्रोह हुआ। उस समय परमहंसजीने अपने को भारताधिपति बोनयाड प्रकट कर कहा,-भारतवर्ष हमारा है। तत्पर्य यह कि परमहंसजीने उस समय ही भारतवासियों को मानो चेतावनी दी थी कि भारतवर्ष हमारा है। इसे अपने अधिकार से हम भारतवासी कभी अलग नहीं जाने दे सकते। इस समस्याको प्रत्येक भारतवासीको पूर्त करनो अपना कर्त्तव्य समझ रखना चाहिये। यह सूत्ररूपमें आपका उद्देश आज स्वराज्य नामसे चरितार्थ किया जा रहा है। आगे इसी अभिप्रायसे स्थान २ पर आपने व्याख्यान देना आरम्भ किया। काशी पहुंचने पर वहांके कलक्टर ने इन्हें गिरफ्तार कर जेल भेज दिया। जेलमें इनका प्रभाव प्रकट होने पर जेल दारोगा इनकी बड़ी खातिर करने लगे। उन्होंने एक दिन परमहंस जीसे पूछा कि आप जेलमें क्यों कष्ट सह रहे हैं। उत्तर में परमहंस जी ने कहा,-मैंने अपनी प्रतिष्ठा तथा सत्ताकी परीक्षाके लिये यह सब बातें की हैं। कल मैं यहांसे चला जाऊंगा।

दूसरे दिन उनके छोड़ने का हुक्म हुआ ।
जेल से निकल कर देखा तो स्त्री तथा एक
पुत्र ही जीवित हैं और सब स्वर्गको चले
गये । ऐसी अवस्था में आपको विशेष
सन्तान की इच्छा हुई । इच्छा होतेही
इन्हें स्वप्न हुआ कि बलया जिलेमें पलटन
तिवारीका छपरा नामक ग्राम है । वहांके
निवासी पलटन तिवारीकी कन्याके साथ
विवाह करो । उधर कन्याके बापको अपनी
कन्याको परमहंसके साथ विवाह देनेका
स्वप्न हुआ । आगे दोनों ओरसे उक्त
स्वप्नोंकी चर्चा हुई और समय पर विवाह
हो गया इस पुनर्विवाहसे परहंसजी के
४ पुत्र हुए ।

द्वितीय विवाहके पश्चात परमहंसजी
पुनः डुमरांव पधारे । इसी समय अर्थात
सम्वत १९३९ में आर्य्यसमाजके जन्मदाता
स्वामी दयानन्दजी महाराज भी डुमरांव
आये । डुमरांवके महाराजने स्वामी जीका
बड़ा सन्मान किया । उपरान्त अनेक
विद्वानोंके समक्ष स्वामीजीके साथ दुर्गादत्त
श्री परमहंस शास्त्रार्थ करनेको निर्वाचित
किये गये परमहंसजी शिवजी की
मूर्ति लेकर सभा में शास्त्रार्थ करनेको

पधारे। स्वामीजी पर शास्त्रार्थ छिड़ गया। परमहंस जीने उत्तर देना आरम्भ किया। घोर विवाद चला। अन्त में स्वामीजी निरुत्तर, स्तब्ध एवम् अवाक होकर यथेष्ट सन्तुष्ट हुए। डुमरांवके महाराज राधाप्रसाद सिंह जीने इस शास्त्रार्थकी विजय के उपलक्ष्य में परमहंस जी को कुछ प्रतिष्ठासूचक सामग्री भेंट की। आगे स्वामी दयानन्दजीने स्वयम् अपनी सभा में लिखा है, बिहार शाहाबाद जिलेमें एक महाविद्वान मुझे मिले। अनन्तर वर्षोंके बीच महाविद्वानोंका खण्डनकर परमहंस जीने विख्यात ग्रन्थ, सद्धर्म शास्त्रार्थ दर्शन और शब्दाकृत आदि ग्रन्थ रचे। अन्त समय सम्वत् १९५० में अपना चित्र उतरवाकर सर्वसाधारण को सूचित कर दिया कि अब मैं अधिक दिन इस संसार में नहीं रहूँगा, जिसे जो कुछ पूछना हो वह इनसे पूछ ले। सम्वत् १९५१ में आश्विन शुक्ल बुधवारको अयोध्या में जाकर विद्वान पंडितों की सभा की। द्वितीय दिवस प्रातःकाल अरुणोदयके समय इन्द्रियों को अवरुद्ध कर काशीपुरी में शुद्धोद्भेदक बहु-मतिसे प्राण विसर्जन किया।

पण्डित शिवबिहारीलाल वाजपेयी द्वारा
जगद्वाणी-प्रेस ईदगांव कदीम लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

अवधवासी ग्रन्थमाला रत्न २७

महारानी दुर्गावती

सन् १९४१ ई०

महारानी दुर्गावती !

महारानी दुर्गावती का जन्म पन्द्रहवीं शताब्दी में सम्राट अकबरके समय हुआ था। यह वीर महिला बुंदेलखंडकी प्राचीन राजधानी महोबाके चन्देल राजाकी पुत्री थी। दुर्गावतीके रूप और गुणोंकी प्रशंसा सुनकर गढ़मंडलके गोंड राजा दलपति शाहने चन्देल राजाके पास उसके साथ अपना व्याह करनेके लिये सन्देशा भेजा किन्तु चन्देल राजाने गोंडकुलसे अपने कुलकी उच्चताका विचार कर उनके साथ अपनी कन्याका व्याह करना उचित न समझ उत्तर भेजा कि यदि मेरी कन्याके साथ चलनेके लिये गोंड राजा पचास हजार मनुष्योंकी सेनाको लेकर आयें तो मैं अपनी कन्याका व्याह सम्बन्ध उनके साथकर दूंगा। चन्देल राजाने अपने मनमें यह अनुमान किया था कि गोंड राजा इतनी सेना नहीं ला सकेगा, अतः अभीयुक्तियुक्त उत्तर देकर टाल देना चाहिये फिर जब जैसा समय

उपस्थित होगा तब वैसा देखा जायगा ।
उस समय गढ़मंडलकी राज्यसीमा १००
मील चौड़ी और ३०० मील लम्बी थी ।
देश समृद्धिशाली और धन सम्पत्तिसे
परिपूर्ण था । प्रजाको किसी प्रकारका कष्ट
न था इस लिये चंदेल राजाका उत्तर पाकर
गोंड राजाको पचास सहस्र मनुष्य लेजाने
में अधिक कठिनता न हुई । गोंड राज
चन्देल राजाके कहनेके अनुसार उक्त संख्या
में सेना लेकर व्याह करनेको महोबा आये ।
चंदेल राजाने अपनी पूर्व प्रतिज्ञासे विवश
होकर अपनी इच्छाके विरुद्ध, उनके साथ
दुर्गावतीका व्याह कर दिया । व्याह हो
जानेके पश्चात बहुत समय तक राजा और
रानी आनन्द पूर्वक राजसुख भोगते रहे ।
पश्चात विधिकी प्रतिकूलतासे महाराजका
स्वर्गवास हो गया । उनकी मृत्युके पश्चात
वीरवल्लभ नामक पुत्रका राजतिलक किया
गया । उस समय राजकुमारकी आयु पन्द्रह
वर्षकी थी । अतः कुमारके अल्पवयस्क
होनेके कारण सम्पूर्ण राजभार महारानीको
अपने ही हाथ में लेना पड़ा । महारानी
सम्पूर्ण राजकाज राजनीतिके अनुसार

करती थीं और राजकुमार माताकी आज्ञानुसार बर्ताव करता था। महारानीके उत्तम प्रबन्धसे प्रजा प्रसन्न थी।

गढ़मंडल नर्मदाके किनारे जबलपुरके दक्षिण ओर पांच मीलके अन्तर पर है। उस समय गढ़मंडल राज्य में सत्तर सहस्र ग्राम थे और राज्यका बहुत भाग जंगलोंसे भरा हुआ था उधर सम्राट अकबरके अक्षय प्रतापका मार्तण्ड तप रहा था। यूं तो बड़े २ राज्य उसके आधीन हो गये थे। बड़े २ राजा तथा महाराजा उसके सम्मुख शीश झुका रहे थे। अभी तक गढ़मंडलका राज्य स्वतंत्र था। इसकी स्वतंत्रता अकबर के लिये असह्य प्रतीत हुई। सन १५७५ ई० में आसफ़खां नामक मानकपुरका सूबेदार अकबरकी आज्ञानुसार छः सहस्र घुड़सवार और बारह सहस्र पैदल सेना लेकर मंडलपर चढ़ आया। रानी दुर्गावती इस चढ़ाईको सुन कर भयभीत नहीं हुई वरन वीरवेष बनाकर धनुषबाण और भाले को धारण किया। हाथी पर सवार हो, आठ सहस्र घुड़सवार दो सहस्र हाथी और अनेक पैदल सैनिक लेकर वह सरदारके साथ

युद्ध करनेको उपस्थित हुई। जिस महारानी का हृदय कमलसे भी अधिक कोमल था स्वदेश और कुल की मर्य्यादाकी रक्षाके लिये वही वज्रके समान कठोर हृदया बन गई। स्वयं वो सेनाका उत्साह बढ़ाती हुई सबसे आगे चल, वीर महारानी ने युद्ध-स्थल में आकर झट शत्रु की सेनापर आक्र-मण कर दिया। बड़ी घमासानकी लड़ाई हुई। आसफ़ख़ां के पांचसौ घुड़सवार काम आये। मुसलमान सेनाके पांव मैदान से उखड़ गये और क्षत्रियोंने उनका पीछा किया। महारानीकी इच्छा थी कि शत्रु की सेनाका अधिक दूरतक पीछा किया जाय जिससे वे दूसरी बार चढ़ाई करने का साहस न करें। किन्तु क्षत्रिय युद्धसे बहुत श्रमित हो रहे थे। वे शत्रुओं का पीछा अधिक दूर तक न कर सके। महारानी की जय हुई। शत्रु गण पराजित और लज्जित होकर लौट गये। दूसरी बार फिर आसफ़ख़ां गढ़मंडल पर चढ़ आया। अबके भी उसकी पराजय और महारानी की जय हुई। इस दूसरी बारकी पराजयसे आसफ़ख़ांको विशेष लज्जा हुई।

अतः तीसरी बार उसने फिर चढ़ाई की।

ऊंची नीची पृथ्वी विचार कर पहिले दो बार जिन बड़ी २ तोपोंको वह साथ में नहीं लाया था इस बार उनको भी लाया और पूर्वापेक्षा इसबार सेनाकी संख्या अधिक कर दी। शत्रु के आनेका समाचार सुनकर महारानी इसतीसरीबार भी सहाना पहन, धनुषवाण और कृपाण लेकर घोड़े पर सवार हो युद्ध को प्रस्थित हुईं। साक्षात दुर्गा जैसी महारानी दुर्गावती अपने वीर सैनिकोंको उपदेश देती जाती थीं शरीर में प्राण रहते युद्धस्थलको न छोड़ना। यदि शत्रु पराजित होगा तो संसार में यश मिलेगा और यदि युद्धमें शरीरपात होगा तो स्वर्गकी प्राप्ति होगी। शरीर अनित्य है। इसके लिये कोई शोक नहीं। यश संसार में अमर है। अतः प्राणोंका मोह त्यागकर शत्रुओंसे युद्ध करो। यातो उनको पराजित करोगे या युद्ध में शरीरको त्याग कर अपने यशको संसारमें अमर करोगे। वीरक्षत्रियोंके हृदयोंमें जातीय रक्तका स्रोत उमड़ उठा। वे गरजते तरजते उमंग पूर्वक युद्धको चले। महारानीके वीर भाव को कहना ही क्या।

बरीबालाने एक पहाड़ीके तंगी मार्ग पर आकर अपना मोर्चा जमाया किन्तु शत्रु की सेना दूसरे मार्ग से वहाँ आगई और सुदांव पाकर महारानीकी सेनासे लड़ने लगी। भयंकर युद्ध हुआ। दोनों पक्षके अगणित सैनिक मारे गये। महारानीके वीर पुत्रने दो बार शत्रु पर आक्रमणकर अपनी वीरता का परिचय दिया। तीसरे आक्रमण में राजकुमार ऐसे घायल हुए कि उनके जीने की आशा न रही। पुत्रकी यह दशा देख रानीने उनको बाहर तम्बूमें ले जानेकी आज्ञा दी। अब बहुतसे सैनिक राजकुमार के साथ उनकी रक्षाको चले गये। केवल तीन सौ योद्धा महारानीके साथ युद्धस्थल में रह गये। वीरतासे लड़ती हुई महारानी युद्ध में डटी रहीं। अनेक शत्रु उनके हाथसे मारे गये।

जिस समय वीर महारानी अपने प्रबल पराक्रमसे शत्रुओंको चकित कर रही थीं, जिस समय उनका कठिन कृपाण शत्रुओंके रक्त से अपनी पिपासा शान्त कर रहा था उसी समय उनके नेत्रमें एक बाण आलगा। महारानीने उसको निकालकर फेंक दिया।

इतनेहीमें एक दूसरा बाण कंठमें लगा। उसके खींचनेपर गम्भीर घाव होगया और रक्तकी धार बह निकली। नेत्रोंकेसन्मुख अंधकार छा गया।

महारानीकी ऐसी दशा देख एक सरदारने उनके समीप आकर प्रार्थना की,—अब आप युद्ध करनेके योग्य नहीं रही हैं। यदि आज्ञा हो तो मैं आपको युद्धके बाहर ले चलूं,,। महारानीने युद्धस्थल त्याग करने में अयश समझ सरदार की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। गंभीर भावसे उत्तर दिया, यद्यपि इस समय हमारी हार है तथापि वंशकी प्रतिष्ठाका त्याग करना योग्य नहीं। युद्ध से भाग कर जाने में बड़ा आयश होगा। शरीर अनन्त काल पर्यन्त संसारमें नहीं रह सकता है। थोड़े दिनों के लिये अयश लेना बड़ा ही अनुचित होगा।,, उपरान्त महारानीने अपने मनमें विचार किया कि अब मैं बहुत व्यथित होरही हूँ। शत्रु मुझे चार ओरसे घेरे हुए हैं। कहीं ऐसा न हो कि वे मुझे पकड़लें। यह सोच निकट आये हुए एक सरदारसे कहा, यदि तुम सच्चे स्वामि

भक्त हो तो तलवार मार कर शीघ्र मेरा शीश धड़से अलग कर दो। तुम्हारे ऐसा करने से मेरी पराजय न होगी। सरदारने मारना स्वीकार नहीं किया। लाचार स्वयं अपने हाथ कटीआर महारानीने अपना काम समाप्त किया। इस प्रकार महारानीकी जीवन क्रिया समाप्त हुई। अन्य शेष सैनिकोंने युद्धकर अपने प्राण त्याग किये। राज कुमारकी भी जीवन लीलासमाप्त हो गई। रानी तथा पुत्र एक ही समाधिमें पृथ्वीको अर्पित किये गये। अब भी रानीकी समाधि युद्धस्थल में बनी हुई है। वहाँ पर जानेवाले यात्री बड़ी भक्तिसे समाधि पर बिल्लौरके टुकड़े चढ़ाते हैं। स्लीमन साहब ने लिखा है,—"सोलह वर्ष हुए मैंने जाकर समाधिको देखा। रानीकी वीरतासे मेरा हृदय भर आया वहाँ की रीत्यानुसार मैंने भी बिल्लौरका एक टुकड़ा समाधि पर चढ़ाया।

पण्डित शिवबिहारी लाल बाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हिवेटगंज कसौल लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

मधयवासी ग्रन्थमाला रत्न २८

महाकवि माघ

सन् १९२१ ई०

महाकवि माघ।

महाराज भोजके समय अथवा उस समय से दस बीस पचास वर्ष पूर्व गुजरात में धर्मदेव नामक एक राजा राज करते थे। उनके मन्त्री श्रीयुत पण्डित सुप्रभदेवजी हुए। सुप्रभदेवजी के पुत्रका शुभनाम दत्तक जी था। दत्तकजी गुजरात प्रदेशके श्रीमालपुर ग्राम में निवास करते थे। इन्हीं पण्डित दत्तकजी के सुपुत्र हमारी इस पुस्तकके परम योग्य पात्र महाकवि माघजी हैं।

यह कविमाघ गुजरात अन्तर्गत धारा नगरीके सुप्रसिद्ध दानवीर राजा भोजके समकालिक हैं। शिशुपाल बध जो माघ-काव्य नामसे प्रसिद्ध है पञ्च महा काव्यों में सर्वोत्तम माना

गया है। "काव्येषुमाघः" यह उक्ति विद्वन मण्डल में प्रख्यात है। माघ काव्यमें राजनीति आदि विषयों का बड़ी उत्तमता के साथ निरूपण किया गया है। इस काव्यके पढ़नेसे सर्व प्रकारके शब्दोंका प्रयोग तथा भाषा उल्लेखन शैली का ज्ञान हो जाता है। कहावत है, "नवसर्गगते माघे नव शब्दो न विद्यते।" इसी प्रकार माघ कविकी सर्वोत्तमताके सम्बन्ध में कहा गया है,—

श्लोक

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम
दंडिनः पदलालित्यं माघेसन्तित्रयोगुणाः

भावार्थ।

कालिदासका उपमा देना भारवि कविकी अर्थ गम्भीरता दण्डि कविके पदों का लालित्य प्रशंसनीय है परन्तु

माघ कविकी कविता में यह तीनों गुण पाये जाते हैं ।

विद्वान होनेके साथ २ महाकवि माघ जी बड़े दानी थे। राजा भोज जैसे दानी राजा आपकी दान कीर्ति से मुग्ध हो गये थे। महाकवि जीको आत्मप्रतिष्ठाका इतना अधिक ध्यान था कि वह राजा भोजके दरबार में बिना बुलाये कभी नहीं गये। राजा भोज भी इन्हें बड़ी प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखते थे। वह स्वयम इनकी दान-लीला देखनेको कभी २ इनके घर पहुँचते थे। लक्ष्मी सरस्वतीका एक स्थान में वास बिरलेही भाग्यवानोंके घर देखनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। महाकवि माघके घर दोनोंही विराजमान थीं। वह जिस प्रकार धुरन्धर विद्वान थे उसी प्रकार प्रभावशाली धनवान भी थे। एक विद्वान अपने

धनको दीन दरिद्रों में किस प्रकार वितरित कर सकता है इस बातको वह भलीभाँति जानते थे। हर घड़ी उनके दरवाजे दरिद्रोंकी भीड़ लगी रहती थी।

ग्रहदशाका फल टाले नहीं टलता जो आज राजा है, ग्रहोंके फेरसे वही कल रङ्क हो सकता है और जो आज गली गली ठोकरें खा रहा है, उन्ह ग्रहोंके फलसे वही कल राजसिंहासनारूढ़ होकर चक्रवर्ती महाराज हो सकता है। महाकवि माघकी जन्म पत्रीमें दोनों प्रकारके ग्रहोंका ज्योतिषियोंने फल लिख दिया था। उनकी प्रथम अवस्थाके लिये उल्लेख था,-- माघजी महाकवि होंगे। उनको दिन प्रति दिन अधिक धनकी प्राप्ति होगी। अन्त समय उनके पैरों में सूजन आ जायगी। शनिश्चर देवकी कृपा होगी।

वह दरिद्र अति दरिद्र हो जांयगे ।

महाकवि माघने दोनों प्रकार की दशाओंका भोग किया । प्रथम बड़े धनवान हुए । उपरान्त अति दरिद्र होगये । भोजन तकका ठिकाना न रहा । पर भिक्षुकोंकी भीड़ उनकी दरिद्रावस्था में भी उनके द्वार पर लगी रहती थी उस भीड़को देखकर एक दिन माघ महानुभावने कहा,--

श्लोक

दारिद्रानल सन्तापःशांतिस्संतोषवारिणा
दीनाशाभङ्गजन्मा तु केनायमुपशाम्यतु

भावार्थ ।

दारिद्र्यरूपी अग्निसे उत्पन्न हुआ ताप संतोषरूपी जलसे शांत हो जाता है । पर याचकोंकी आशा भंग से उत्पन्न हुआ हार्दिक दाह किसी प्रकार शान्त नहीं होता ।

अनन्तर बहुत दुःखी होकर माघजी राजा भोजपुरी धारानगरी पधारे। वहाँ पहुँच कर स्वयम् तो नहीं गये किन्तु अपनी स्त्रीको स्वरचित निम्न श्लोकोंको देकर राजा भोजके दरबार में भेजा।

श्लोक

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदंभोज खण्डम्।
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः॥
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तम्।
हतविधिललितानांही विचित्रो विपाकः

भावार्थ।

सूर्य उदय हो रहा है, चन्द्रमा अस्ताचलको जा रहा है, कुमुदवनकी शोभा बिगड़ गयी, कमलसमूहमें शोभा आ गयी। उल्लूका आनन्द जाता रहा, चक्रवाक प्रसन्न होगये। हा! भाग्यहतों का कर्म फल विचित्र है।

राजा भोजने इन श्लोकोंको पढ़कर ३ लाख रुपयेसे माघ कविकी स्त्रीका सम्मान किया। पर माघ कविकी स्त्री कोई साधारण स्त्री नहीं थी। धन ले कर राजमहलसे वह बाहरको चलीं। दरवाजेसे निकलते न निकलते उन्होंने राजद्वार पर देखा कि राजा भोजका ही एक द्वारपाल उनके पति महाकवि माघजीकी प्रशंसा कर रहा है।

पतिकी प्रशंसा श्रवण कर आपने जो कुछ धन पाया था, वह सब उसी द्वारपाल को दे दिया और वहां से खाली हाथ घर लौट आईं। माघ कवि अपनी स्त्री की यह दानलीला सुनकर उस दरिद्रावस्था में भी बहुत प्रसन्न हुए। आगे थोड़ेही दिनों बाद उसी धारानगरीमें महाकविका स्वर्ग-बास हुआ। उनकी स्त्री अपने पतिके साथ सती हो गयी। राजा भोजको

इस दुर्घटना वियोग का बड़ा शोक हुआ। उन्होंने उनकी अन्त्येष्टि क्रिया अपने हाथोंकी। कोई कोई कहते हैं—महाकवि माघके कोई सन्तान नहीं थी। सन्तानके अभावमें ही राजाके द्वारा उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की गयी थी।

जो हो, माघकविका नाम सदा के लिये अमर है। (१) रघुवंश (२) कुमारसम्भव (३) किरातार्जुनीय (४) नैषध (५) शिशुपालवध इन पञ्च महाकाव्यों में अन्तिम सर्वश्रेष्ठ है।

पाठक ! महा कविमाघके जीवन से हम लोगोंको शिक्षा मिलती है कि धन विद्या दोनोंका उपार्जन एकमात्र परोपकार के निमित्त किया जाता है और उपकार-चित्त-वृत्तिको उन्नत एवम अवनत दोनोंही अवस्थाओं में धैर्यपूर्वक स्थिर रखना कर्तव्य है।

पण्डित शिवबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
नवलकिशोर-प्रेस हिवेट रोड लखनऊ
मुद्रित और प्रकाशित

जयवाणी ग्रन्थमाला रत्न २९

महाप्रभु वल्लभाचार्य

सन् १९३१ ई०

महाप्रभु वल्लभाचार्य।

श्रीयुत पण्डित लक्ष्मण भट तैलङ्ग ब्राह्मण हैं। आपकी स्त्री का नाम इल्लमगारू है। पति पत्नी दोनों अपने दक्षिण देश से काशी पुरी को जारहे हैं चलते चलते बिहार प्रान्तके चम्पारन्य सारन जिलेमें पहुंचे। वहां चौरागांव में ठहर गये। यहां इल्लमगारू ने एक पुत्र रत्नका प्रसव किया।

ग्रीष्म ऋतु वैसाख मास, कृष्ण पक्ष की ११ तिथिविक्रमी सम्वत १५३५ की यह बात है। ज्योतिषियों ने गणित करके कहा-इस घड़ीका जन्मा पुत्रबड़ा प्रभावशाली होगा। माता पिताने ज्योतिषियोंके इन वचनोंको हृदय में रख कर वहांसे निश्चिन्त हो काशीका पयान किया। वहां रहकर इनकी बालक्रीड़ा

से दुर्गाल सोहिल होते रहे। आगे जब इनकी ५ वर्षकी अवस्था हुई तो इन्हों ने वहां के सुप्रसिद्ध विद्वान पण्डित माधवाचार्य से अध्ययन करना आरम्भ किया। थोड़े ही समयमें यह सुपण्डित हो गये।

सम्वत १५४८ में आपके पिता का शरीरान्त हो गया। इस समय महा-प्रभुकी अवस्था १२ वर्षकी थी। आपके दो भाई और थे। बड़े भाई का नाम रामकृष्ण था और छोटेका रामचन्द्र। दोनों ही भाई संस्कृतके अच्छे कवि थे। पिताकेदेहांत होनेपर उन्होंनेअपने देश दक्षिणकी ओर गमन किया। वहाँ विजयनगरके राजा कृष्णदेवकी सभा में शङ्कर सम्प्रदायवालों से शास्त्रार्थ किया। उसमें इनकी जीत हुई। १२ वर्ष की अवस्था में इनका यह प्रभाव देखकर वहांके निवासी आपसे मुग्ध हो गये।

संयोगवश विष्णु स्वामी की गद्दी

जहाँ उस समय खाली थी। सब महन्त आचार्योंने मिलकर उस गद्दीका आपको अधिपति बनाया। अब आप वल्लभाचार्य उपाधि से विभूषित हुए उपरान्त आप काशीजी फिर गये। वहाँ पण्डितोंसे शास्त्रार्थ कर आपने विजय प्राप्तकी। आगे ब्रज गये। वहाँ गिरिराजपर श्रीनाथजी की स्थापना की और उनकी सेवा वात्सल्यभाव से करनेवाली एक नवीन प्रणाली निकाली।

यह समय औरङ्गजेब नामक मुसलमान बादशाह का था। सारा धार्मिक भारत उसके अत्याचारोंसे पीड़ित था। महा प्रभु वल्लभाचार्यजी उसके उपद्रवोंसे रक्षित रखनेके निमित्त श्रीनाथ जीकी मूर्ति को मेवाड़ उठा ले गये। वहाँ उनका आज पर्यन्त बड़ा भारी वैभव है। लाखों रु०वार्षिक भोग राग में खर्च होता है। उपरान्त महाप्रभुजीने तीन बार भारत भ्रमणकर अपने मतको प्रचार किया। भारतवर्षकेप्रायः

तीर्थ तथा देवस्थानों में महाप्रभुजीकी बैठकें हैं। जिस स्थानमें महाप्रभु जीने बैठकर एक सप्ताह में श्रीमद्भागवतका सम्पूर्ण पारायण किया है वह स्थान महाप्रभुकी बैठक नामसे प्रसिद्ध हुआ है। इसप्रकारकी सम्पूर्ण भारत में ८४ बैठकें हैं।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जीने ५२ संस्कृत ग्रंथोंका निर्माण किया। श्रीमद्भागवत सुबोधनी तिलक, ब्रह्मसूत्र परअणुभाष्य और जैमिनीय सूत्रपर भाष्य इन्हीं का किया हुआ है। महाप्रभुके मुख्य ८४ शिष्य हुए हैं। उनका वृत्तान्त आपके पौत्र गोस्वामी गोकुलनाथ जीने "चौरसी वैष्णवोंकी वार्ता नामक ग्रंथ में लिखा है। इन शिष्यों में अनेक हिन्दीके अच्छे कवि हुए हैं। सूरदास, परमानन्द, कृष्णदास और चतुर्भुज दास प्रभृति आपके शिष्य अष्टछाप में परिगणित हुए हैं।

महा प्रभु वल्लभाचार्यकी स्त्रीका नाम

लक्ष्मी अक्कूजी था। आपके दो पुत्र थे। बड़े पुत्रका नाम था गोस्वामी गोपी नाथजी और छोटेका नाम गोस्वामी बिट्ठल नाथजी। गोपीनाथ जी का वंश नहीं चला। बिट्ठल नाथजी बहुत प्रसिद्ध हुए।

विक्रम सम्वत १५८७ में आषाढ़ कृष्ण २ को महाप्रभुने काशीजी के हनुमान घाटपर अपने शरीर को त्याग दिया। देहत्याग के पूर्व आपने सन्यास लेलिया था। अतः अपने पुत्रोंको उपदेश करते २ सशरीर महाप्रभुने गङ्गाजीमें प्रवेश किया।

काशीजीमें श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु जीने शरीर को अवश्य त्यागा किन्तु ब्रज और ब्रजवासियोंसे आपको महा प्रेम था। यही कारण है कि महाराज ब्रजभाषा में रचित हिंदी कविताके बड़े उन्नायक थे। वह स्वयम हिंदीमें कविता करना नहीं जानते थे किन्तु हिन्दी भाषाकी कविताके वह अद्वितीय प्रेमी थे। ब्रजवासी और ब्रजभूमिके

प्रेमको महाप्रभुजी भाषाके इस पदको कहकर प्रकट किया करते थे,—" व्रज-वासी वल्लभ सदा मेरे जीवन प्रान।" एक संस्कृत विद्वान आचार्यके मुखसे हिन्दी भाषाके पदका उच्चारण होते देख कौन ऐसा बुद्धिमान होगा जो मुक्त कण्ठसे यह कहनेको तय्यार नहीं होजायगा कि महाप्रभु वल्लभाचार्यजी महाराज हिन्दीके उत्कट प्रेमी नहीं थे। और ऐसा कौन दूरदर्शी होगा जो यह नहीं समझ सकेगा कि वल्लभाचार्य जी महाराजने उस समयमेंही यह समझ लियाथा कि भविष्य में हिन्दी काही विशेष प्रचार तथा गौरव होगा। और यही कारण है कि आगे चलकर आपके शिष्योंने हिन्दी भाषाके कविय मेंउच्च स्थान प्राप्त किया। धन्य महा प्रभु! आपने धार्मिक आचार्य होनेके साथरदेश भाषा हिन्दीके उन्नायक होकर हिन्दी संसार में भी उच्च स्थान प्राप्त किया।

श्री वल्लभाचार्य जी श्री शिष्य

स्वामी सम्प्रदायके शिष्य थे। इस हेतु आपको गोस्वामी कहते हैं। महाराज ने अपनी गद्दी गोकुल में स्थापित की थी अतः आप गोकुली गो स्वामी कहलाये। आपने अनेक शहरों में अपनी बैठके स्थापित की। महाराजको कोई अग्नि का पुत्र कोई अग्निका अवतार मानतेहैं। महाराज वल्लभाचार्य जीने जिस मतका प्रचार किया उसका नाम शुद्धाद्वैत रक्खा है। शुद्धाद्वैतको पुष्टिमार्ग भी कहते हैं।

महाराजके छोटे पुत्र विट्ठलनाथ जीके ४ कन्या और ७ पुत्र अर्थात गिरधर राय गोविन्द राय, बालकृष्ण गोकुलनाथ, घनश्यामजी, रघुनाथ और यदुनाथ हुए। इन सातों पुत्रों ने अपनी २गद्दी भिन्न २ स्थानों में स्थापित की। सातों गद्दी अविछिन्न परम्परा से चली जाती हैं। इन में श्रीनाथ जीकी गद्दी मुख्य समझी जाती है।वहांके महाराज को टिकैत अर्थात तिलकायत कहते हैं।

पुष्टिमार्ग सम्प्रदायके आचार्य गृहस्थ होते हैं। वह कृष्ण के बाल स्वरूपकी उपासना करते हैं। आपस में मिलते समय " जयकृष्ण " , "जयगोपाल" कहते हैं। कंठी बांधते हैं। कंकूका दो लीटी का खड़ा तिलक करते हैं गोपी चंदनकी छाप लगाते हैं। भक्ति पूजा, उत्सव, भोग आदि उत्तम प्रकारसे करते हैं। मुक्ति को गोलोक कहते हैं। आचार्य को "पूर्ण पुरुषोत्तम" अर्थात कृष्ण परमात्मा मानते हैं।

पण्डित बिशनबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैदरगंज कदीम लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

ब्रजवासी ग्रन्थमाला रत्न ६७

बाबा रघुनाथदास

सन १९११ ई०

बाबा रघुनाथदास ।

अवध अन्तर्गत सीतापुर जिले में पैंतेपुर ग्राम है। वहां कान्यकुब्ज ब्राह्मण पचवारके पाण्डेय पंडित दुर्गाप्रसाद जी रहते थे। विक्रम संवत १८७२ में आपके घर रघुनाथदासका जन्म हुआ। पिताने पुत्रका रघुनाथ दास जैसा नाम रखा, वैसेही वह रघुनाथ जीके भक्त निकले। लड़क-पनसे ही रघुनाथदास जीके हृदय में श्रीरामचन्द्र जीका अनुराग उत्पन्न हुआ।

बड़े होनेपर अयोध्यावासी बाबा मौनीदास जीके आप शिष्य हुए। घरकी आर्थिक दशा अच्छी न होनेके कारण रघुनाथदास जीने अंग्रेजी सेनाके गोलन्दाजों में नौकरी करली। नौकरी की अवस्था में भी

रघुनाथदास जी सदैव हरिभजन में लवलीन रहते थे।

रघुनाथदास जी ५ भाई थे। खुद उनके कोई सन्तान नहीं थी पर उनके भाइयोंका वंश अब भी सीतापुर जिलेके चक दैलपुर ग्राममें मौजूद है। पहले कह चुके हैं कि नौकरी करते रहने पर भी रघुनाथदास जी हरिभजन में लवलीन रहते थे। कई बार ऐसा हुआ कि वह राम भजन में मग्न पड़े रहे और उनके पहराका समय निकल गया। पीछे दरियाफ्त करनेसे उन्हें मालूम हुआ कि उनकी अनुपस्थितिमें कोई मनुष्य उन्हीं के जैसा पहरेका काम करता रहा है।

इस प्रकारकी घटनाओंको देख सुनकर रघुनाथदास जीका रामके चरणों में और भी प्रगाढ़ प्रेम बढ़ता गया। होते करते एक समय महाराज

जिले में भिनगा राजाकी गढ़ी पर
सरकारी फ़ौजने चढ़ाई की । चढ़ाई
करनेवाली अंगरेजी फ़ौज में रघुनाथ
दास भी थे । उस चढ़ाईके सम्बन्ध
में रघुनाथदास जीने यह कविता
लिखी है,—

तोपैं अट्टपली छपनीं
गोलकसो लायके धाय चढ़ाईं ।
कै फुट कचपट म्हिहरगो
किन जायके बहुतक फेर कराईं ।
सूझत एक न एक कहैं
रघुनाथ धुआँनभ छाईं ।
गोलन मार गिराय गढ़ी
भिनगा भुनगा समदैत उड़ाईं ।

इस भिनगाकी गढ़ी दहन क्रिया
के समय रघुनाथदास जी धावा करने
वालोंके साथ नहीं थे । यद्यपि उन्हें
सरकारी पलटनके अफसरने तोपों पर
अपनी गोलन्दाज सेनाके साथ जाने
की आज्ञा दी थी तथापि रघुनाथ

दास जी वहां नहीं गये। उन्होंने अफसरके हुक्मसे ईश्वरके भजन में लवलीन रहना अधिक उत्तम समझा अथवा यों कहिये भगवद्भजन में तल्लीन रहनेके कारण उन्हें किसी अफसरका हुक्म तथा पलटनोंके जाने आनेका शब्द सुनाई ही नहीं दिया। जो हो, रघुनाथदास उक्त मोर्चे पर नहीं गये।

फल यह हुआ कि जितने गो-लन्दाज मोर्चे पर थे, वह सब मारे गये जो रहे वह भी भाग खड़े हुए। पर समस्त पलटनके नष्ट होने तथा भाग जाने पर भी एक वीर अकेले मोर्चेको थामे पड़ा रहा। और थामे ही क्यों रहा उसने अकेले अपनी गो-लाबारी से विरोधी-दल को परास्त किया। उस समय फौजके अङ्गरेज अफसर गार्बट साहब थे। उन्होंने अपनी आंखोंसे यह सब रण-कौशल

देखा। साथही उन्होंने यह भी देखा कि वह उनकी गोलन्दाज सेनाके योद्धा रघुनाथ दास हैं।

यहाँ रघुनाथ दासजी युद्ध खतम होने पर अपने को गैरहाजिर जान राबर्ट साहबके सामने जाने में संकोच कर रहे थे। पर हाजिरीके समय ज्यों त्यों कर आगे पीछे पैर रखते वह साहबके पास पहुँचे। वहाँ साहब इनकी और लीला देखकर सन्तुष्ट था। इनको देखते ही उसने कहा,—"तुमने बड़ी बहादुरीका काम किया। हम तुम्हारा दरजा बढ़ानेकी रिपोर्ट करेगा।" राबर्ट साहबके मुखसे इतना शब्द निकलते ही रघुनाथदासजीको पूर्ण वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने मनही मन कहा,—हो न हो, यह रामचन्द्रकी कृपा है। उन्होंने हमको अपना लिया है। बारम्बार उनकी कृपाका अनुभव कर भी हम

जाथाजाउ में पड़े रहें तो हमारी भूल है।" यह विचार कर उन्होंने अपनी नौकरीसे इस्तीफा दे दिया। इनको नौकरी छोड़ते देख रावर्ट साहबने इनको तरक्की देने, इनका ओहदा बढ़ाने तथा इनको बहुत बड़ा आदमी बनाने आदिका अनेक प्रकारसे लालच दिया, किन्तु रघुनाथ दास जीने एक न माना। वह बन्धन मुक्त होकर अयोध्या जी चले आये।

उस समय रघुनाथ दास जीकी स्त्री भी जीवित थी। आप उन्हें भी अयोध्या जी लाये। कुछ काल बाद स्त्रीका शरीरान्त हो गया। बाबा रघुनाथ दासजी अब स्वतन्त्ररूपसे भगवानका भजन करने लगे। भजन के प्रभावसे देश में आपकी खूब प्रसिद्धि हुई। राजा महाराजा सेठ साहूकार, गरीब अमीर सभी अब बाबा रघुनाथ दास जी महाराजके

दरबार में पहुँचने लगे सदाव्रत जारी हो गया। समय समय पर भण्डारे होने लगे। भण्डारोंके समय आपका अद्भुत चमत्कार दिखाई देता था। भण्डारेके समय कभी कभी भोजन सामग्री कम पड़ जानेसे कार्यकर्त्तागण घबड़ाकर महाराजके पास पहुँचते थे। उन्हें घबड़ाये देख महाराज कह देते थे, जाओ! कुछ नहीं घटेगा और कुछ नहीं घटता था।

भजन भावके अतिरिक्त महाराज देशकालके अनुसार चतुर पुरुष तथा अच्छे विद्वान थे। भाषा कविता बनाने में आपको अधिक प्रेम था। हरिनाम सुमिरनी तथा विश्राम सागर आदि आपके रचे ग्रन्थ देखने योग्य है। इस प्रकार भगवद्भक्तिका चमत्कार दिखाकर विक्रम सम्वत १९३९ में ६६ वर्षकी अवस्था में

महाराज रघुनाथदास जीने इस असार संसार को त्याग दिया। अयोध्याजी में बाबा रघुनाथदास महाराजकी छावनी सुप्रसिद्ध है। महाराजके शिष्य भारतवर्षके प्रायः सभी स्थानोंमें विचरा करते हैं। समय समय पर वह अपना महीत धन छावनी के महन्तको नियमानुसार भेंट करते हैं। कोई कोई शिष्य अपना स्वतन्त्र स्थान बना कर इधर उधर भी रहते हैं। वैरागियोंके अतिरिक्त हज़ारों लाखों गृहस्थ महाराज तथा महाराजकी गद्दीके शिष्य हैं। धन्य महाराज!

पण्डित गिरिबिहारी लाल बाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैवलॉक रोड लखनऊ
मुद्रित और प्रकाशित

अवधवासी ग्रन्थमाला रत्न २१

महाराज शङ्कराचार्य

महाराज शङ्कराचार्य ।

मद्रास प्रान्तके मलाबार जिलान्तर्गत कलाड़ी ग्राममें विद्याधिराज नामक पं० के घर पुत्ररत्नका प्रसवहुआ । पं० पिताने पुत्र का नाम विश्वजीत उपनाम शिवगुरु रखा । इन शिवगुरुजीका विवाह माघ पण्डितकी कन्या विशिष्टाके साथ हुआ । वृद्धावस्था तक कोई सन्तान न होनेपर दम्पति सन्तान के हित वृषपर्वतपर शिवजीकी आराधना करने लगे । इस दम्पति आराधनासे शिवजी प्रसन्न हो प्रकट हुए । शिवगुरुने पुत्र-सन्तानके लिये उनसे विनय की । महादेव जीने विनय सुनकर प्रश्न किया,—" हे दम्पति ! किस प्रकार की सन्तानकी तुम्हे इच्छा है । अल्प बुद्धी अनेक पुत्रोंकी अथवा अल्प आयुवाले सर्वज्ञ एक पुत्रकी ?„ शिवगुरुने उत्तर दिया-"अल्पायु वाले सर्वज्ञ एक पुत्रकी ही मेरी आकांक्षा है ।„ एवमस्तु कहकर शिवजी अन्तर्ध्यान हो गये । समय पाकर शिवगुरुकी भार्य्या श्रीमती विशिष्टा देवी

ने पुत्र जना। इस पुत्रका नाम शिवगुरुजीने शङ्कर रखा।

बालरूप शङ्कर जन्मकालके पश्चात चन्द्रकला की भांति दिन दूना रातचौगुना चमत्कार दिखाने लगे। पर पिता जी को आपके भावी ऐश्वर्य-सुखका अनुभव करना बदा नहीं था। वह इनको ५ वर्षकी अवस्था होने परही इस असार संसारसे चल दिये। केवल माताकी संरक्षिता में आप ८ वर्षके हुए। उस समय नर्मदातट पर श्री गौड़पाद जीके शिष्य श्रीगोविन्द भगवत्पादजी एक सिद्ध पुरुष रहते थे। उन्हें कोई गोविन्दनाथ, कोई गोविन्दानन्द और कोई गोविन्द योगीन्द्र नामसे सम्मान पूर्वक सम्बोधित करता था। वास्तव में वह बड़े भारी महात्मा थे। इन्हीं महात्माजीसे हमारे चरित्र नायक शङ्करजीने अपनी माताजी की आज्ञा लेकर ८ वर्षकी अवस्था में सन्यास धर्म की दीक्षा ली। अनन्तर उनसे १६ वर्षकी अवस्था तक सम्पूर्ण विद्या प्राप्त की। आगे गुरु महाराजकी आज्ञासे आप काशी जी पधारे। वहां कावेरी तट

निवासी एक ब्राह्मण कुमारको सन्यास की दीक्षा दी । और उस शिष्यका नाम सनन्दन रखा ।

उपरान्त और अनेक लोगोंको सन्यास की दीक्षा देकर अपने शिष्य बनाया । इन सब शिष्यों को लेकर महाराज शङ्कराचार्य जी तीर्थयात्रा को निकले । चलते चलते आप बद्रिकाश्रम पहुँचे । वहाँ कुछ समय निवास किया । इस निवास समय में महाराजने व्यासजी रचित सूत्रों पर ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, माण्डूक्य, तैत्तिरेय, ऐतरेय, छांदोग्य और बृहदारण्य-इन १० उपनिषदोंपर भाष्य रचना की । अनन्तर श्री भगवद्गीता पर भाष्य रचा । महाराज के यह तीनों भाष्य "प्रस्थान-त्रयी नामसे ख्यात हैं । इनके अतिरिक्त महाराज शङ्कराचार्यजीने अनेक वेदान्त ग्रन्थों की रचना की और उन्हें अपने शिष्योंको पढ़ाया । शिष्यों में सनन्दन जो महाराजके प्रेमपात्र थे । इन्हें महाराज "पद्मपाद" नामसे पुकारा करते थे ।

काशी जी में रहते समय एक दिन

महाराज गंगा स्नान किये आ रहे थे। मार्ग में चार कुत्तोंको बांधे एक चण्डाल मिल गया। उसे आते देख शङ्कर स्वामी जीने कहा,—"गच्छ दूरे!,, इस वाक्यको सुनकर चण्डालने उत्तर दिया,—"वेद तथा उपनिषद् परब्रह्मको अद्वितीय, अनन्त, असङ्ग तथा सत्य बतलाते हैं। आपमें यह भेदबुद्धि देख बड़ा आश्चर्य होता है। स्पर्शके भयसे आपने मुझे मार्ग छोड़नेको कहा। मैं देखता हूँ कि मेरी और आपकी आत्मा में कुछ भेद नहीं है। आप जैसे महात्मा जन मोहजाल में फंसकर इस क्षणभंगुर नश्वर देह में वृथा आत्म अभिमान करते रहते हैं।,, यह कह कर चण्डाल गुप्त हो गया। उसी स्थान में चारो वेद हाथ में लिये एक विद्वान ब्राह्मण साक्षात शिव जैसे दृष्टिगोचर हुआ। "एकमात्र ब्रह्मही सत्य है और सब मिथ्या है,, इस प्रकारका उपदेश देकर वह ब्राह्मण अन्तर्ध्यान हो गया। आगे चलकर इसी उपदेशके आधार पर स्वामी शङ्कराचार्य महाराजने स्मार्त धर्मका प्रचार करना आरम्भ किया। इसी अभिप्रायसे महाराज

काशी छोड़ कर प्रयागजी गये । वहां पहुंचकर उस समयके सुप्रसिद्ध पण्डित कुमारिल भट्ट से भेंट की । कुमारिलजीने इनका अभिप्राय समझ इनसे कहा,-"यदि तुम अद्वैत मतका प्रचार करना चाहते हो तो महिष्मतीवासी कर्ममीमांसक पण्डित मण्डन मिश्रको शास्त्रार्थ में जाकर परास्त करो। उनके परास्त होनेसे भारतके अन्य सब पण्डित परास्त होने के तुल्य हो जायंगे । कुमारिल भट्टका यह उपदेश ग्रहणकर शङ्करस्वामी महिष्मती को सिधारे । कुछ समय बाद नरमदा तटस्थ महिष्मती पुरी श्रीशङ्कराचार्य जी पहुचे । वहां पंडित प्रवर मण्डन मिश्र जीसे जाकर कहा-"आपने वेदानुकूल अद्वैत मार्ग को छोड़कर केवल कर्म मार्गका ही आश्रय लिया है। अतः अद्वैत मार्गका पक्ष समर्थन कर हम आपसे शास्त्रार्थ किया चाहते हैं। "मण्डन मिश्रने उत्तर दिया,-"मेरी शास्त्रार्थ करनेकी सदैव इच्छा रहती है, किन्तु मुझे शास्त्रार्थ करनेवाला कोई मिलता नहीं। आज आप मिले यह बड़े आनन्दकी बात है । मैं शास्त्रार्थके लिये

तैयार हूँ। किन्तु यह बतलाइये कि मेरे आपके शास्त्रार्थ में मध्यस्थ कौन होगा ?„ मण्डन मिश्रकी स्त्री सरस्वती बड़ी विदुषी थी। दोनों विद्वानोंकी सम्मतिसे इस शास्त्रार्थमें वही मध्यस्थ हुई। मध्यस्थ होने पर पंडिता सरस्वती जीने दोनों ही विद्वानों के गले में एक एक पुष्प माला पहना कर कहा,-"शास्त्रार्थ करते करते जिसकी यह माला कुम्हला जाय वह अपने को परास्त समझे। शङ्कराचार्य स्वामी ने कहा,-"यदि मैं परास्त हो जाऊंगा तो सन्यास आश्रम त्याग कर श्वेत वस्त्र धारण कर लूंगा।„ प्रत्युत्तर में मण्डन मिश्रने कहा,-"यदि मैं परास्त हूँगा तो गृहस्थाश्रम छोड़ कर सन्यासाश्रम को आचरण करूंगा।

शास्त्रार्थ होने लगा। दोनोंहि वेद और युक्तियोंसे अपने २ पक्षको समर्थन करने लगे। पांच छः दिनके पश्चात जब शङ्कराचार्यजी जीवब्रह्मका अभेद सिद्ध करने लगे तब मण्डन मिश्रकी माला कुम्हला गयी। इतने में उनकी स्त्री सरस्वती जी बोल उठीं। कहा,—"यतिराज आप

पूर्णतया मेरे पतिको अभी नहीं जीत सके। वेद प्रमाण है से उनका अर्धाङ्ग अभी शास्त्रार्थ करनेको बाकी हूं। मुझे भी यदि आप परास्त कर देंगे तो पति देव आपके शिष्य हो जायगे। „शङ्कराचार्य जी ने इस न्याय को स्वीकार किया। सरस्वती शङ्कराचार्यजीसे शास्त्रार्थ होने लगा। १७ दिनपर्यन्त शास्त्रार्थ में किसीका पक्ष न गिरा। अब सरस्वती ने विचारा,–"शङ्करा चार्य बाल ब्रह्मचारी हैं। काम शास्त्र में इनकी प्रवृत्ति नहीं है। इसी ओर खींचकर इन्हें पराजित करना चाहिये।„यह सोचकर प्रश्न किया,–" काम कलो कितनी हैं? काम का स्वरूप क्या है? वह किस स्थान में रहता है? उसकी पूर्व और अन्तिम स्थिति क्या है? स्त्री पुरुषोंमें उसकी विल-क्षणता क्या है?„ थोड़ी देर मौन रहकर शङ्कराचार्य जी ने कहा,–"एक मास पीछे इसका उत्तर दूंगा।„

उपरान्त शिष्यों सहित शङ्कराचार्य जी महाराज मंडन मिश्रके घरसे चल दिये। जाते समय अमरूक नामक राजा का मृत शरीर इन्हें प्राप्त हुआ। उसे देख शिष्योंसे स्वामी

जी ने कहा,-"मैं अपनी आत्मा को इस मृतक शरीरमें प्रवेश कराता हूं। मेरे शरीर की इसी गुफामें रक्षा करना। मैं राज शरीर से काम कला सीख कर पुनः योग बलसे अपने शरीर में आ जाऊंगा।" इतना कहकर वह राजाके शरीर में प्रवेश कर गये। राजा जीवित होगया। राजनगर में आनन्द की बधाई बजने लगी। योगिराज की आत्मा पाकर राजा धर्म राजके जैसे प्रजा का पालन पोषण करने लगा। यह लीला देख मन्त्रियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह राजाको अमर बनानेकी चेष्टा में पड़े। इधर राजा अपने पूर्व कथित उद्देश्य की सिद्धि में लगे। स्त्रियों के प्रसङ्ग और काम शास्त्र के ज्ञाता पण्डितों से मिलकर काम कलाओं का खूब परिज्ञान किया। भाष्य सहित वात्सायन सूत्रोंका अभ्यास किया। शृङ्गार का निरूपण "अमरू-शतक नामक ग्रन्थ बनाया। यहां शङ्कराचार्य महाराज राज-शरीर में काम चातुरी सीख रहे हैं, वहां शिष्योंने देखा शास्त्रार्थ का समय व्यतीत हो रहा है। वह ढूंढते ढूंढते अमरूक राजा के दरबार में आये और अपनी

गान विद्याकी चातुरीसे महाराजको उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाया। शङ्कराचार्यजीने उसे समक्ष राजाके स्थूल शरीर को त्याग पुनः अपने शरीरमें प्रवेश किया। अनन्तर शिष्यों सहित पुनः माहिष्मती गये और सरस्वतीको कामशास्त्रसे पराजित किया। उपरान्त मण्डन मिश्र स्वामी जीके शिष्य हो गये। शङ्कराचार्यजीने सन्यासकी दीक्षा देकर उनका नाम सुरेश्वराचार्य रखा।

तत्पश्चात महाराज दक्षिणको गये, वहां श्रीवल्ली ग्राम में निवास किया। वहां से शिष्यों सहित तुंगभद्रा तटपर शृङ्गेरी पुरी पधारे। इस समय महाराजके अनेक शिष्य थे। उनमें पद्मपाद, हस्तामलक, सुरेश्वराचार्य, तोटकाचार्य, इत्यादि १० शिष्य प्रधान थे। इन दसों शिष्योंकी गणना वेदान्त दर्शनके आचार्यों में है। सबको साथ लेकर महाराजने दिग्विजय की। द्वैत मतवालोंको परास्तकर महाराजने अद्वैत भावसे सब मतोंको स्थापित किया। विष्णु शिव में भेद रखनेवालोंको अभेद बुद्धि रखने का उपदेश दिया। उपदेश में

कहा, - "ब्रह्म उपासना करने योग्य; होनेपर भी कठिन है। अतः शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश, दुर्गा आदि, देवताओंकी समानभावसे उपासना करो। यह सब ब्रह्मके अंग हैं। जैन बौद्ध आदि मताभिमानियोंको जगतगुरू महाराज शङ्कराचार्य स्वामीने परास्त किया। तदनन्तर शिष्यों सहित महाराज बद्रिकाश्रम गये। वहां केदाराश्रम पहुँचकर ३२ वर्षकी अवस्था में स्वामी जीने अपने नश्वर शरीरको त्याग दिया।

स्मार्त धर्म प्रवर्तक जगद्गुरू शङ्कराचार्य महाराजने शरीर त्यागनेके पूर्व इसी अल्पावस्था में लोकोपकारार्थ भारतवर्षकी चारो सीमाओंपर चार मठ स्थापित कर उनमें अपने योग्य शिष्यों को मठाधीश नियुक्त कर दिया।

दक्षिणकी सीमापर मैसूर राज्य अन्तर्गत शृङ्गेरी ग्राम है। वहां श्रृंगेरीमठ स्थापित कर उसका भार अपने शिष्य पृथ्वीधराचार्यको दिया। यहांके आचार्यों का--भुवार सम्प्रदाय, भूर्भुव-गोत्र हुआ। उनकी सरस्वती. भारती और पुरी उपाधि हुई। रामेश्वर क्षेत्र, वराहदेवता,

और कामाक्षी उनकी देवी हुई। तुंगभद्रा तीर्थ, यजुर्वेद, और अहंब्रह्मास्मि उनका महावाक्य रहा। इस मठके ब्रह्मचारी चैतन्य नामसे प्रसिद्ध हुए।

पश्चिमकी सीमापर श्रीद्वारका पुरी में शारदा मठ स्थापित कर अपने शिष्य विश्वरूपाचार्यको सौंपा। इस मठके आचार्योंका कीटवार सम्प्रदाय, अवगत गोत्र हुआ। तीर्थ आश्रम तथा श्रीपाद उपाधि हुई। द्वारिका क्षेत्र, सिद्धेश्वर देवता, भद्रकाली देवी, गङ्गागोमती तीर्थ, सामवेद और तत्त्वमसि महावाक्य हुआ। इस मठके ब्रह्मचारी स्वरूप नामसे प्रख्यात हुए।

उत्तरकी सीमा पर गढ़वाल प्रान्त में जोशी मठ स्थापित कर उसका भार अपने योग्य शिष्य त्रोटकाचार्यको दिया। इस मठके आचार्योंका आनन्दवार सम्प्रदाय, भृगु गोत्र हुआ। गिरि, पर्वत तथा सागर उपाधि हुई। बदरिकाश्रम क्षेत्र, नारायण देवता, पुण्यगिरिदेवी, अलकनन्दा तीर्थ अथर्वण वेद और अयमात्मा-ब्रह्म महावाक्य रहा। इस मठके ब्रह्मचारी आनन्द नामसे ख्यात हुए।

पूर्वकी सीमापर उड़ीसा अर्थात् उत्कल प्रांत अन्तर्गत श्रीजगन्नाथ पुरीमें गोवर्धन मठ स्थापित कर उसका भार अपने परम प्रिय शिष्य पद्मपादाचार्यको दिया । इस मठके आचार्योंका सम्प्रदाय भोगवार और काश्यप गोत्र हुआ । वन, अरण्य उपाधि हुई । पुरुषोत्तम क्षेत्र, श्रीजगन्नाथ देवता, विमला देवी, महोदधि तीर्थ, ऋग्वेद और प्रज्ञानमानन्दब्रह्म महावाक्य हुआ । इस मठके ब्रह्मचारी प्रकाश नामसे विदित हुए ।

इन पूर्वोक्त चारों गद्दियोंकी परम्परा में होनेवाले महन्त शङ्कराचार्य नाम धारण करते हैं और प्रत्येक मठके मठाधीश के नामके साथ जगद्गुरु शङ्कराचार्य दोनों विशेषण लगाये जाते हैं । उपाधियुक्त नाम अन्त में रहता है ।

महाराज शङ्कराचार्यके जन्मका ठीक समय बतलाना कठिन है । तब परम्परा इससे अनुमान होता है कि सन् ई० की ८ सदीमें वह वर्तमान थे । महाराज शङ्कराचार्य की ग्रन्थ रचना अनुपम प्रतिभा अमानुषिक शक्ति, अलौकिक अखण्डनीय युक्तिपूर्ण सारगर्भ उपदेश प्रसिद्ध हैं ।

पण्डित प्रियबिहारी लाल वाजपेयी द्वारा
अवधवासी-प्रेस हैवटगंज कटीक लखनऊ
में मुद्रित और प्रकाशित

[illegible] ग्रन्थमाला रत्न ४२

महारानी अहिल्याबाई

सन् १९४१ ई०

महारानी अहिल्याबाई !

अहिल्याबाई का जन्म सन् १७३५ ई०में सेंधिया वंशमें मालवाप्रदेशके एक साधारण ग्राम में हुआ था। उनका शरीर न बहुत लम्बा था न छोटा। रंग सांवला था। मुखपर एक दिव्य ज्योति प्रदीप्त मान थी। अहिल्याबाई अत्यन्त उदारचित्त और दयालु थीं। यद्यपि उस समय महाराष्ट्रों में स्त्रियों के पढ़ने लिखने की रीति नहीं थी परन्तु अहिल्याबाई सुशिक्षिता थीं। बाल्यावस्था हीसे अहिल्या बाई की धर्म में रुचि थी। उन्होंने गुरुसे मंत्र ग्रहण किया था और उनकी आज्ञानुसार अपने इष्टदेवकी श्रद्धाभक्ति युक्तरीतिसे किया करती थीं। अहिल्याबाईका व्याह मल्हार राव होल्करके पुत्र खंडराव होल्करके साथ हुआ था। थोड़ीही अवस्था में उनके एक पुत्र और एक कन्याका जन्म हुआ। पुत्रका नाम था मालीराव और कन्याका मच्छा बाई। सन१७५४ई०में अहिल्याबाईके पतिका स्वर्गवास होगया। उस समय अहिल्याबाई

के श्वशुर मल्हारराव होल्कर जीवित थे। इन्होंने अपने पतिके साथ सती होना चाहा परन्तु मल्हाररावके अत्याग्रहसे उन्हें अपना विचार त्यागना पड़ा। विधवा होनेके समय अहिल्याबाईकी अवस्था केवल बीस वर्षकी थी। विधवा होनेपर वह श्वेतवस्त्र बिना किनारीके पहनती थी। आभूषणों में केवल रुद्र माला थी। मल्हारराव सदा बाहरी युद्धोंमें लगे रहते थे वह अपनी सेनाके साथ बाफ बाओं, नामक स्थानमें रहा करते थे। अहिल्याबाई घर में रहकर सम्पूर्ण प्रबन्ध करती थीं। वही वार्षिक आय संचित करतीं, वही आयव्यय का निरीक्षण करतीं और वही आवश्यकतानुसार मल्हाररावके पास धन भेज दिया करती थीं। मल्हाररावका देहांत होने पर अहिल्याबाईका पुत्र मालीराव राज्याधिकारी हुआ। मालीरावके भाग्य में अधिक समय तक राज्य करना नहीं बदा था। वह गद्दी पर बैठनेके एक साल बाद मर गया। उनके मरने पर होल्करके मुख्य मंत्री गङ्गाधर यशवन्त ने अहिल्याबाईसे किसी बालक को गोद लेनेके लिये कहा। पर वे उनकी कुटिलता ताड़ गई और उत्तर दिया "मैं एकको स्त्री

और दूसरे की माता हूँ अब किस तीसरे को राज्याधिकार समर्पित करूं । मैं स्वयंही गद्दीपर बैठूंगी। निदान १७६६ ई० में राज्य शासनका भार उन्होंने ग्रहण किया। मरहठों के दलपति गङ्गाधरने पेशवाके चचा राघोबा दादाको धनका लोभ देकर यह लिख दिया कि आप इस समय चढ़ाई करदें तो यह राज्य अनायास ही आपको प्राप्त हो सकता है। राघोबा दादाने लोभ में पड़कर अहिल्याबाई पर चढ़ाई कर दी। इधर अहिल्याबाई ने भी युद्धको संपूर्ण योजना कर तुकोजी रावको अपना प्रधान सेनापति बनाया और अस्त्र शस्त्र लेकर युद्धको तैयार हो गयीं। साथही सेनापति की मारफत राघोबाको सन्देशा भेजा कि यदि आप युद्धार्थ प्रस्तुत हैं तो समझ बूझ कर आगे बढ़िये। मैं भी आपके स्वागतके लिये तत्पर हूँ तुकोजीके इन बचनोंको सुनकर राघोबाका हृदय कांप उठा और उसने तुकोजीको उत्तर दिया,—मैं केवल बाईजीको उनके पुत्र वियोगके शोक में सान्त्वना देने आया हूँ लड़ाई करनेके लिये नहीं। युद्ध स्थगित हो गया और राघोबाने कुछ लोगोंके साथ जाकर अहिल्याबाईसे इन्दौर

में भेट की। अहिल्याबाईने उसका बड़ा आदर सत्कार किया। वह एक मास वहीं निवास करके लौट गया। अहिल्याबाईने गद्दी पर बैठते ही राजकोष पर तुलसीदल रख कर उसे परमार्थ में लगानेका संकल्प किया। अपने इस प्रणको उन्होंने कहांतक निबाहा यह पाठकोंको आगे चलकर स्वयं ज्ञात हो जावेगा। वह प्रतिदिन प्रातः काल स्नानकर पूजन पर बैठ ब्राह्मणोंसे कथा पुराण इत्यादि सुना करती थीं। पूजासे उठकर दान तथा भिक्षादि बांटती थीं। वह स्वयं अतिसामान्य भोजन करती थीं। थोड़ी देर तक विश्राम कर फिर राज सभाको जाती थीं। संध्यातक राज काज किया करती थीं। उनके दरबार में किसी को जानेकी रोक नहीं थी। प्रत्येक व्यक्ति उनके सन्मुख जाकर अपना आवेदन कर सकताथा। उसे सुनकर वह यथोचित आज्ञा प्रदान करती थीं। संध्याको सभा भङ्ग होने पर वह तीन घंटे तक फिर पूजा करतीथीं। उसके पीछे मंत्री इत्यादिकोंके साथ आवश्यक मंत्रणा कर और रातको ग्यारह बजे सोती थी। उनकी दिन तथा रात्रि चर्या यह थी। भोग और सुखको छोड़ कर जिस

प्रकार उन्होंने राज काज चलाया वैसे उदाहरण इतिहासमें बहुत कम दृष्टिगोचर होते हैं। उनका राज्य शान्तिमय था उनके राज्य की ओर किसी भी उपद्रवी को दृष्टिपात करनेका साहस नहीं होता था। एकबार उदयपुरके राणाके साथ उनका विवाद हो गया परन्तु राणाकी सेना पराजित हो गई। राणाने सन्धि करके झगड़ा मेट दिया। अहिल्याबाई के पति और पुत्रके परलोक प्रयाणका वृत्तान्त ऊपर लिखा जा चुका है। उसके अतिरिक्त वृद्धावस्था में भी आपत्तियोंने बाईजीका पिंड नहीं छोड़ा। कुटिल कालने उनकी कन्याके पुत्रको उसकी युवावस्था में उठा लिया। यह हृदय बिदारक शोक न हो पाया था कि कुछ ही कालके अनन्तर उनके जामाता, मच्छाबाई के पति का परलोकवास हो गया। अब अहिल्याबाई के दुखों की सीमा न रही। मच्छाबाई ने पतिके साथ सती होजानेका बिचार किया। अहिल्याबाई ने उनको अनेक प्रकार से समझा कर कहा—"पुत्री! अब इस वृद्धावस्था में एक मात्र तूही जीवनाधार है। मुझको केवल तेराही अवलम्ब है। तेरे कठिन

विछोहमें मैं कैसे जीवन धारण करूँगी। तेरे वियोग की कठिन चोट मैं अपने हृदय पर कैसे सहन करूँगी। उसके स्मरण मात्रसे मेरा हृदय फटा जाता है। सारा शरीर शोकाग्नि से जलाजाता है। इसलिये तू अपना संकल्प त्याग दे।" मच्छाबाई ने उत्तर दिया,— "माता अब तुम वृद्धा हो। संसार में अब तुम बहुत थोड़े दिन रहो गी। मेरे पति तथा पुत्र दोनों परलोकवासी हो चुके हैं। तुम्हारे न रहने पर मेरा यह जीवन भार स्वरूप हो जावेगा। इस लिये तुम मेरे इस शुभअवसरको न जाने दो। मुझे इस संसार से पति के साथ ही विदा हो जानेकी आज्ञा दो। जब अहिल्याबाई ने देखा कि वह किसी प्रकार अपना संकल्प छोड़ना नहीं चाहती है तब अत्यन्त कातर स्वर हो कर उन्हें सती होजानेकी आज्ञा प्रदान करदी। चिता बनाई गई। मच्छबाई अपने पतिके शवको गोद में लेकर चिता पर जा बैठी। चिता में अग्नि लगाई गई। देखतेही देखते मच्छाबाईका सुकुमार शरीर भस्म हो गया। उस समय अहिल्याबाई को जो दुःख हुआ उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके विलापसे उपस्थित

जनताका हृदय विदीर्ण हुआ जाता था। वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। जब चिता ठंढी हो गई तब नर्मदा में स्नान कर घरको गईं। तीन दिन तक अन्न जल नहीं किया। चित्त शान्त होने पर उन्होंने अपनी प्यारी पुत्री और जामाता के स्मार्क में चिता स्थान पर एक रमणीक मन्दिर बनवा दिया। उपरान्त तीन वर्षतक महारानी अहिल्याबाई ने राज राज्य किया। आगे सन १७९५ ई० में साठ बर्षकी अवस्था में, इस धराधाम में अपनी अचल कीर्तिका ध्वजारोपणकर स्वर्गका मार्ग लिया। बाईजी लुटेरोंके साथ भी दयाका बर्ताव करती थीं। अपनी प्रजा को सुख चैन में देख कर उन्हें सब से अधिक प्रसन्नता होती थी। भारत वर्ष के बहुतसे राज्योंके प्रतिनिधि अहिल्या बाईके दरबार में और उनके प्रतिनिधि भी पूना, हैदराबाद, नागपुर, श्रीरंगपट्टन और लखनऊ आदिमें रहते थे। भारत वर्षके बड़े राजाओं के साथ अहिल्याबाईका लेन देन हुआ करता था। उन्होंने बहुतसे गढ़ निर्माण कराये थे। एक सड़क विन्ध्याचल पर्वत को काट कर बनवाई थी। बाईजीने

लाखों रुपये व्यय करके राज्य भरमें धर्म-शालायें, मन्दिर तथा बड़े२ दृढ़ कूप निर्माण कराये थे। काशी, मथुरा प्रयाग, जगन्नाथ, द्वारका, रामेश्वर और केदारनाथ आदि तीर्थों में उन्होंने बड़े मन्दिर बनवाकर सदाबर्त बिठलाये। वह इससमय तक बराबर चल रहे हैं। काशीके बिश्वनाथ जीके मंदिर का शिखर सोनेसे उन्होंने ही मढ़वायाथा। अहिल्याबाई परम वैष्णव थीं। यद्यपि उन-बंश में मांस भक्षणका निषेध नहीं था। परन्तु वे निरामिष भोजन करतीं थीं। वे प्रतिदिन दीन तथा दरिद्र मनुष्योंको भोजन कराती थीं। ग्रीष्म में स्थान स्थान पर पानी पिलाने के पौसाले बैठाती थीं। जाड़े में कङ्गालोंको कंमल बांटती थीं। पशु पक्षियों पर दया करके उनके लिये पानी और चारे का प्रबन्ध करती थीं। इतना सब करनेपर भी उन्हें अपनी श्लाघा नहीं रुचती थी। एक बार कोई पंडित उन की प्रशंसा में एक पुस्तक बनाकर लाया। उन्होंने उसको सुनकर अपनी असंतुष्टता प्रकट की और उसकेरचयिता को कुछ भी पुरस्कार नहीं दिया। उस पुस्तकको नष्ट कर डालने की आज्ञा दी।

रुपये व्यय क

, मन्दिर त

। काशी,

रामेश्वर

होंगे

[illegible]

[illegible]

में मुद्रित और प्रकाशित

ब्रह्मचर्य सोपान	।)
राजशिक्षा सोपान	≡)
साधन सोपान	।)
शाक्त सोपान	।)
धर्म प्रचार सोपान	≡)
उपदेश पारिजात (संस्कृत)	॥)
[illegible]हिक पुराण (भाषा टीका)	१॥)
[illegible] दर्शन (भाषा भाष्य)	२)
श्रीभारतधर्ममहामंडल रहस्य	१।)
निगमागम चन्द्रिका	१)
मन्त्रयोग संहिता (भाषा टीका)	१)
[illegible] संहिता ,,	॥।)
[illegible] ,,	=)
[illegible] कुसुमांजलि (संस्कृत)	।)
[illegible] मांसा दर्शन प्रथम भाग (भाषा टीका)	१॥)
[illegible] द्भगवद्गीता प्रथम खंड (भाषा टीका)	१)
[illegible]ष्णुगीता (भाषा टीका)	१)
सूर्यगीता ,,	॥)
शक्तिगीता ,,	१)
धीश गीता ,,	॥।)
शंभुगीता ,,	१)
सन्न्यास गीता ,,	॥।)
गुरुगीता ,,	।)
दिव्यजीवन	॥।)

डाक्टर जगदीश चन्द्र बोस	।=)
नागपुरकी कांग्रेस	॥।)
स्वतन्त्रताकी झन्कार	॥)
नवयुवको स्वाधीन बनो	॥)
असहयोग दर्शन	१।)
हिन्दुस्तानका राष्ट्रीय झण्डा	१)
बोलशेविज्म	१।=)
चित्तरञ्जनदासकी जीवनी	॥)
अकालियोंका सत्याग्रह	॥)
खादीका इतिहास	॥=)
भारत और अंग्रेज	१॥)
पंजाबका नरहत्या कांड	॥।≡)
गांधी दर्शन	१)
सनातनधर्म दीपिका (यन्त्रस्थ)	
धर्मकर्म दीपिका	॥)
वर्णाश्रम संघ और स्वराज्य	=)
स्त्रीशिक्षा भजनावली	-)॥
स्त्री धर्म चेतावनी	-)
व्रतोत्सव चन्द्रिका	३)
श्रीराम गीता	५॥)
प्रयाग माहात्म्य	॥=)

मैनेजर—

निगमागम बुकडिपो,
भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड,
टेश्शन रोड, बनारस सिटी।